प्रतिनिधि कविताएँ

रणजीत

सिद्धार्थ प्रकाशन, उदयपुर

©

डॉ. रणजीत
A-004 आदर्श विहार, 5/1,बन्नेरगट्ट रोड़,
बेंगलूरु-500029, (कर्नाटक)
मोबा-09341556673

आवरण
डॉ. श्रीनिवासन अय्यर

प्रकाशक
सिद्धार्थ प्रकाशन
.....
मुद्रक : सेठ प्रिन्टर्स, उदयपुर फोन : 2525424

मूल्य : पुस्तकालय संस्करण-दो सौ रुपये
जनसंस्करण - एक सौ रुपये

प्रतिनिधि कविताएँ

रणजीत

पुरोवाक्

✍ डॉ. रमाकांत शर्मा

मार्क्सवाद से अनुप्रेरित हिन्दी के प्रगतिशील-जनवादी कवियों में डॉ. रणजीत सर्वथा अलग और विशिष्ट कवि हैं। जड़ मार्क्सवादियों से डॉ. रणजीत की पटरी कभी नहीं बैठी। 'दास केपिटल' को 'धर्मग्रंथ' मानने वाले अंधविश्वासियों से डॉ. रणजीत ने एक निश्चित दूरी सदैव बनाए रखी है। वे मार्क्सवाद से रचनादृष्टि प्राप्त करते हैं, लेकिन अपना विवेक गिरवी नहीं रखते। लोकतंत्र, व्यक्तिगत स्वाधीनता और मानवीय मूल्य के पक्षधर कवि हैं डॉ. रणजीत। इसकी फलश्रुति यह हुई कि वे साहित्य के तानाशाहों की आँखों की किरकिरी बन गये। इनके रचनाकर्म की उपेक्षा की जाने लगी। वे साहित्य की राजनीति के शिकार हुए। मार्क्सवादियों ने डॉ. रणजीत को बिरादरी बाहर का कवि माना और कलावादियों ने कभी आँख उठा कर नहीं देखा। इस प्रकार साहित्य की दुनिया में अपनी जगह तलाशने में डॉ. रणजीत को आधी शताब्दी तक संघर्ष करना पड़ा।

आज से लगभग दो दशक पूर्व जब राजस्थान साहित्य अकादमी की ओर से डॉ. रणजीत के कविताकर्म पर 'मोनोग्राफ' लिखने का प्रस्ताव मुझे मिला तब मैंने उक्त प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकारते हुए डॉ. रणजीत की समस्त काव्य कृतियों का गहराई से अध्ययन किया। उनकी कृतियों से गुज़रते हुए मैंने यह अनुभव किया कि डॉ. रणजीत मनुष्य-विमर्श के कवि हैं - जिसके स्वाभाविक हिस्से हैं - दलितविमर्श और स्त्री-विमर्श। जबकि इन दोनों विमर्शों के नारे बरसों बाद वजूद में आये।

डॉ. रणजीत के कविता-कर्म की खूबी यह है कि वह विचाराधारात्मक आतंक से सर्वथा मुक्त है। इनकी कविताएँ मनुष्य धर्म की पक्षधर कविताएँ हैं। मानवीय संवेदना और मानवीय जीवनमूल्य इनकी कविताओं में द्रव और खनिज की तरह मौजूद हैं। विचारबोध, भावबोध और कलाबोध का त्रिवेणी-संगम इनकी कविताओं में देखते ही बनता है। डॉ. रणजीत की आधुनिकता आधुनिकतावादियों की आधुनिकता नहीं है। व्यापक विश्वविज़न के बावजूद उसकी भारतीयता की धज बराबर बनी रहती है।

क्रोध और विद्रोह के साथ प्रेम और करुणा की विविध भावदशाएँ डॉ. रणजीत की कविताओं में इन्द्रियबोधात्मक बिम्बों में व्यक्त हुई हैं। एक बेहतर दुनिया का ख्वाब इस कवि की आँखों में सदैव ज़िन्दा रहता है। वे दुनिया को

जीने और रहने लायक बनाने के लिए आदमी को इन्सान रूप में देखना चाहते हैं। यही प्रयोजनधर्म इनकी कविताएँ बखूबी निभाती हैं।

डॉ. रणजीत क्योंकि कलावादी कवि नहीं हैं, इसलिए इनकी कविताओं में कलाबाज़ी और पच्चीकारी नहीं मिलेगी। वे अंधउत्साही प्रगतिवादी भी नहीं है, इसलिए इनकी कविताओं में बयानबाज़ी और नारेबाज़ी भी नहीं मिलेगी। इनकी कविताओं के केन्द्र में मनुष्य है। इसलिए इनकी कविताओं में मनुष्य के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आशा-उल्लास, संघर्ष-प्रतिरोध, जय-पराजय के अनेक भाव प्रसंग मिलेंगे - जो अत्यन्त विश्वसनीय होने के साथ-साथ मर्मभेदी भी हैं।

डॉ. रणजीत के अब तक अनेक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 1964 में प्रकाशित 'ये सपने : ये प्रेत' से लगाकर 2008 में प्रकाशित 'जूझती संकल्पनाएँ' के बीच 'जमती बर्फ़ : खौलता खून', 'इतिहास का दर्द', 'इतना पवित्र शब्द', 'झुलसा हुआ रक्तकमल', 'पृथ्वी के लिए', 'अभिशप्त आग' और 'ख़तरे के कगार तक' जैसे कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि अब डॉ. रणजीत की प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह 'प्रतिनिधि कविताएँ : रणजीत' नाम से प्रकाशित हो रहा है। मुझे उम्मीद है, हिन्दी के पाठक-जगत में इस कृति का समुचित स्वागत होगा।

'संकेत-विला'
ब्रह्मपुरी-प्रतापमंडल, जोधपुर (राज.)

●●●

अनुक्रम

1. जूझती प्रतिमा - 1
2. शब्द सैनिकों से - 2
3. नयी साधना - 3
4. कभी-कभी - 5
5. लड़ाई जारी रहेगी - 6
6. मैं प्यार बेचती हूँ - 7
7. विष-पुरुष - 10
8. ये सपने : ये प्रेत - 10
9. बिना कुदाल उठाये - 11
10. अस्ति-नास्ति संवाद - 12
11. मीरा नहीं हो तुम - 13
12. पृष्ठभूमि - 14
13. दुनिया : एक वेइंग मशीन - 15
14. सपनों के बाग़ - 16
15. हारे हुए सिपाही का वक्तव्य - 18
16. साँसें और सपने - 20
17. फाउस्ट के कन्फेशन - 21
18. एक हिन्दुस्तानी लड़की - 22
19. प्रमथ्यु - 23
20. इतनी सपाट जिन्दगी - 24
21. इकारस - 25
22. मेरे आस-पास के लोग - 26
23. माध्यम - 27
24. भूकम्प - 30
25. एक बाग़ी की स्वीकारोक्तियाँ - 31
26. सिर्फ़ एक शब्द नहीं - 33
27. एक विराट पवित्रता - 35
28. अभिशप्त आग - 36
29. एक द्वन्द्वात्मक स्थिति - 37
30. मेरे लिन मनरो का अन्तिम पत्र - 38
31. एक अर्से बाद - 41
32. इतिहास का न्याय - 41
33. बर्फ पिघलने के बाद भी - 42
34. संवेदनाओं के क्षितिज - 43
35. तुम नहीं हो - 46
36. इसका मैं क्या करूँ ? - 47
37. एक नयी पुस्तक - 48
38. पुष्प योनि - 49
39. प्रतिश्रुति का गीत - 50
40. ममता - 53
41. अभी आदमी - 54
42. विपरीत चिन्तन - 55
43. सखाराव के निर्वासन पर - 57
44. अलस चिन्तन - 58
45. शिरीष का पेड़ - 59
46. शब्दों के पुल - 60
47. इतना पवित्र शब्द - 61
48. आम्र कुंजों में उभरता वियतनाम - 62

49. दर्द की गाँठ - 64
50. अपनी खोयी हुई अस्मिता के लिए - 66
51. प्रवासिनी बिटिया के प्रति - 70
52. सपने में - 71
53. गाँव - 72
54. सिरफिरों का साथ - 82
55. यह आदमी - 84
56. क्रान्ति : एक भारी उद्योग - 86
57. पोलैण्ड के बारे में - 89
58. जबर-काट - 91
59. प्रतीक्षा - 92
60. गोदो का इन्तजार - 93
61. काम - 97
62. राष्ट्रवादी भारतीय - 98
63. पानी - 100
64. संसार हत्या का षडयंत्र - 101
65. अनुपस्थिति - 104
66. बिना सोचे-समझे - 106
67. तदर्थ जीवन - 107
68. कितना अच्छा है - 108
69. पेड़ - 109
70. कभी-कभी यह सोचकर - 111
71. स्त्रीलिंग संज्ञा के लिए - 113
72. जैसे - 114
73. पृथ्वी के लिए - 115
74. आह ! सत्तर साल में ही - 117
75. मीरा - 118
76. मेरे देश - 120
77. कितनी अच्छी होती - 123
78. कुछ नहीं होता - 124
79. जलो - 125
80. मुसलमान के बारे में - 126
81. मैं मरूँगा सुखी - 128
82. मनुष्य के बारे में - 129
83. दो हज़ार पच्चीस में - 130
84. नये साल का संकल्प - 132
85. काश, हम बन सकते - 135
86. नर-वानर - 137
87. नयी सदी की शुरुआत में - 138
88. किताबें - 139
89. बचाओ - 142
90. कॉक्रोच - 146
91. अजन्मे बालिका भ्रूण का आत्मचिन्तन - 149
92. भाषिक भ्रष्टाचार - 151
93. सिकुड़ता हुआ अन्तरिक्ष - 153
94. मैं ढूँढ़ रहा हूँ - 154
95. विवेक-संगत - 155
96. अपने ही घर में - 156
97. सोचना - 157
98. नयी पीढ़ी से - 157
99. सिंहासन या दरी - 158
100. परमपिता परमात्मा के सिवा - 159
101. कितना अच्छा है - 161
102. कुहरे डूबा नया साल है - 164

जूझती प्रतिमा

नहीं रहा मैं अपने पथ पर आज अकेला
क्योंकि तुम्हारी भी आँखों में
कल के विकल स्वप्न जागे हैं
तुमने भी निर्मम होकर, अतीत के
तोड़े सभी मोह-तागे हैं
स्मृतियों में जीना तुमने भी छोड़ दिया है
और धधकते वर्तमान का
तुमने भी विष-पान किया है
ताकि भविष्यत् के अपने सपनों को
तुम भी सुधा-सिक्त कर पाओ
समझ गयी हो तुम भी, इस मानव समाज के
अनगढ़ शिला खंड के भीतर
मूर्तिमान होने को जूझ रही जो
प्रतिमा -
सब पाषाणी बन्ध काट कर
उसको बाहर लाना होगा
मिट्टी की परतों में दबी हुई छटपटा रही जो
एक अजन्मी दुनिया की उस नयी पौध को
हृदय-रक्त से सींच हमें उमगाना होगा।

सहमी सी नज़रों से पर इस तरह न देखो
सपनों के रखवाले केवल हम्ही नहीं हैं
हम पर ही उन्माद नहीं छाया भविष्य का
जगती के सुख-दुख के मस्ले
सिर्फ़ हमारे ही दिल पर के भार नहीं हैं
हम-मंज़िल हैं बहुत हमारे
जो नयनों में सपन
दिलों में तपन
सिरों पर कफ़न बांध चलते हैं।

आओ हम भी जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाएँ
अँधियारे के दैत्यों से जो लड़े जा रहे
नवयुग का ध्वज लिए हाथ में बढ़े जा रहे
रक्त बीज बो-बो कर जो आगामी कल को
लाल किरन से मढ़े जा रहे
उन लोक-हरावल में चलने वालों से कदम मिलाएं
ताकि हमारी सबकी आँखों में जो छाये
वे संघर्षरत स्वप्न कभी सच्चे बन पाएं।

●●●

शब्द सैनिकों से

जाओ !
ओ मेरे शब्दों के मुक्ति-सैनिको, जाओ !
जिन जिन के मन का देश अभी तक है गुलाम
जो एकछत्र सम्राट स्वार्थ के शासन में पिस रहे अभी हैं सुबह-शाम
घेरे हैं जिनको रूढ़ि-ग्रस्त चिन्तन की ऊंची दीवारें
जो बीते युग के संस्कारों की सरमायेदारी का शोषण
सहते हैं बेरोकथाम
उन सब तक नयी रोशनी का पैग़ाम आज पहुंचाओ
जाकर उनको इस क्रूर दमन की कारा से छुड़वाओ !
जाओ,
ओ मेरे शब्दों के मुक्ति-सैनिको, जाओ !

●●●

नयी साधना

'बोधिवृक्ष' की छाया में हम भी बैठे हैं
हमने भी सोचा है, मनन किया है
फिर पाया आलोक ज्ञान का
अपने दीप स्वयं बनकर के
'सुगति-मार्ग' हमने भी ढूंढा
जगती के सुख-दुख के कारण
और निवारण
हम भी समझे
बहुजन-हित के लिए 'संघ' की शरण ग्रहण की
सुना रहे हैं जन-जन को संदेश सत्य का
घूम-घूम कर
'पशु-बलि' का विरोध हम भी करते हैं
फिर भी यदि अन्वेषण के परिणाम हमारे
गौतम से कुछ अलग रहे हैं
तो वह बस इसलिए कि गौतम ने केवल
एक बार जीवन देखा था
- आंख खोल कर -
जरा-मृत्यु के एक रूप में
इसीलिये वे
जन्म-मरण के चक्कर को ही
दुख का मूल समझ बैठे थे
किन्तु हमारे आगे
अच्छी तरह ज़िन्दगी को जी सकने के सच्चे मस्ले हैं
लोगों की रोटी-रोज़ी की
उलझी हुई समस्याएं हैं।

हमने भी वश किया 'इंगला औ' पिंगला' को
प्राणों का संयम हमने भी सीखा
- सांस रोक कर हम भी करते रहे प्रतीक्षा -
युग युग से सोयी जीवन की 'कुण्डलिनी' को
साध, जगाकर किया ऊर्ध्वमुख

लेकिन समझ गये जल्द ही :
अपना यह नाड़ी मंडल तो बहुत सूक्ष्म है
– बहुत तुच्छ है –
इसीलिये तो
अपने से बाहर के जग की नाड़ी आज टटोल रहे हैं
आत्म-दमन तो युग-युग से करते आये हैं
किन्तु बाहरी रिपुओं की भी
– अधिक प्रबल जो –
ताक़त आज भुजाओं पर हम तौल रहे हैं
डोल रहे हैं
मेहनत का तप और स्वेद की भस्म रचा कर
नगर-नगर में, गांव-गांव में
किन्तु ब्रह्म का नहीं
साम्य का 'अलख' जगाने
क्योंकि आज हर साधक के सम्मुख
शून्य-गगन से धरा-सत्य पर आने के अतिरिक्त
नहीं पथ कोई
टूटी बिखरी मानवता का 'योग' छोड़कर
कोई सम्यक् योग नहीं है।

हम भी झूम झूम कर गाते
मिलों-कारखानों-खेतों में
गीत प्रीत के
'कंस'-ध्वंस केः
'कान्ह'-जीत के
वृन्दावन की कुंजगलिन में
जैसे सूरा झूम रहा हो
'सखा-भाव की भक्ति' हमारी भी है
किन्तु हमारा कान्ह
सूर के सखा श्याम के अगर भिन्न है
तो वह बस इसलिए कि सूर ने
केवल एक श्याम को पहिचाना था
और हमारी आंखों आगे
लाख-करोड़ों कान्ह खड़े हैं।
जीवित मानव।

कभी कभी

कभी कभी डर सा लगता है
इस पीले प्रेतों की बस्ती में रहते रहते ही
प्रेत न मैं खुद ही हो जाऊं
उन सब ज़िन्दा इन्सानों की तरह जिन्होंने
पहले स्वर में –
मानवता की विजय-पताका फहराई थी
किन्तु जिन्हें फुसला-फुसला कर
चाँदी के इस चक्रव्यूह में लाकर
इन प्रेतों ने
आज प्रेत ही बना लिया है।
यों तो अपने पर मुझको विश्वास बहुत है, लेकिन
आसपास की स्थितियों के प्रभाव को भी
झुठलाना मुश्किल है
ठीक है –
इन्सानियत के प्यार की यह वृत्ति कुछ हल्की नहीं है
कभी कभी पर
नोटों के काग़ज भी कहीं अधिक भारी हो जाया करते हैं
मन के गहरे विश्वासों को
तन की भूख हिला देती है
रोटी की छोटी सी क़ीमत भी कभी कभी
इन बड़े बड़े आदर्शों को रेहन रख कर
मिट्टी में गर्व मिला देती है।

यदि ऐसा हो कभी :
कि डस ले पूंजी का अजगर मुझको भी
प्रेतों के हाथों मैं भी बिक जाऊं
मानवीय क्षमता, समता के गीत छोड़ कर
प्रेतों का ही यशोगान करने लग जाऊं
तो ओ छलना से बचे हुए ज़िन्दा इन्सानो !
मुझको मेरे वे गीत सुनाना
जो मैंने कल प्रेतों को इन्सान बनाने को लिक्खे थे

प्रेतों में सोया ईमान जगाने को लिक्खे थे
एक और बिकते आदम पर
एक और बनती छाया पर
उन गीतों की शक्ति तौलना
हो सकता है
उनकी गर्म सांस फिर मेरे
मुर्दा मन में प्राण फूंक दे
किरणों की अंगुलियाँ उनकी
चाँदी की पर्तों में दबे पड़े
इन्सानी बीजों को अंकुर दे जायें
फिर से शायद
भटका साथी एक तुम्हारा राह पकड़ ले
और तुम्हारा परचम लेकर
लड़ने को प्रस्तुत हो जाये -
कभी कभी डर सा लगता है।

●●●

लड़ाई जारी रहेगी

प्यार और बग़ावत के मैं गीत लिखता हूं
हैवानियत की हार और इन्सानियत की जीत लिखता हूं
लड़ाई ज़ारी रहेगी जब तक 'इन्सान' इन्सान नहीं बनता
इसलिये अपना नाम अभी 'रणजीत' लिखता हूं।

●●●

मैं प्यार बेचती हूँ
(नज़्रे भवानी)

जी हाँ हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ –
मैं तरह-तरह के किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

यह प्यार प्रगल्भ ब्याहिता का, यह प्यार अधीर कुंवारी का
यह प्यार स्वकीया का, परकीया का, यह प्यार विमुक्ता नारी का
यह प्यार हक़ीकी है, यह प्यार मजाज़ी है
यह प्यार रिन्द है, सूफ़ी है, यह प्यार नमाज़ी है
यह शुद्ध भारती प्यार जो पहले आँख मीच कर शादी कर लेता है
फिर या तो आहें भरता है या धीरज धर लेता है
यह यार बोर्जुआ है, यह जनवादी है
यह प्यार रुहानी है, यह माद्दी है
यह प्यार खींचता और चिपा लेता है, यह मैग्नेटिक है
यह प्यार पुकारा तो करता पर मिलने से डरता है-यह प्लेटोनिक है
जी हां हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ-
मैं तरह-तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

जी साड़कीय यह प्यार, जो केवल मुस्काता है
जी पार्कीय यह प्यार, पास में बिठलाता है
जी कॉलेजी यह प्यार सिर्फ़ बातें करता जो
प्रॅस्क्राइब्ड कोर्स से बाहर जाने में डरता जो
जी यह पिकनिक का प्यार जाग कर सो जाता है
ताश के पत्तों में मिल-मिलकर खो जाता है
यह प्यार त्रिकोणी है, फिल्मों वाला, जो एक साथ दो रोल किया करता है
हर शाम रूठता रेस्त्राँ में हर सुबह फ़ोन पर बोल लिया करता है
यह प्यार साल भर तक चलता गारन्टी-धारी है
यह हफ्ते के हफ्ते मिलता है फ़ुरसत में – रविवारी है
जी हाँ हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ –
मैं तरह-तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

यह प्यार मौसमी है कुदरत के हाथों में जो पलता है
यह बिजली से पकने वाला, जो बिन मौसम फलता है
यह क्लोरोफ़िल-संयुक्त प्यार जो खून साफ़ करता है
यह सर्व विटामिन-युक्त, शिथिल-तन में जीवन भरता है

यह प्यार हरा है, कच्चा ही खाया जाता है
यह प्यार मसाला डाल पकाया जाता है

यह प्यार ज़रासा सख्त और यह ख़स्ता है
यह प्यार थोड़ा सा महंगा है, यह सस्ता है
यह प्यार विलायत से आया, यह देसी है
जी वैसा ही लें आप, आपकी रुचि जैसी है
जी हाँ हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ –
मैं तरह-तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

जी चाहे आप प्यार लें मान-भरा अभिमान भरा
जी चाहे आप प्यार लें वचन-भरा, मुस्कान-भरा
जी अगर आप विकसित-रुचि हैं, यह प्यार रूठने वाला लें
जी अगर आप क्षणजीवी हैं, यह झटपट उठने वाला लें
जी अगर चूर हों मेहनत से यह प्यार थकान मिटाता है
जी अगर घिरे हों चिंता से यह प्यार ग्रन्थि सुलझाता है
जी अगर आपका दिल बहले यह प्यार यहां रो सकता है
जी अगर आप नाराज़ न हों यह प्यार खफ़ा हो सकता है
जी आज्ञा दें यह प्यार आपके संकेतों पर मरता है
जी बस यह ले लें आप, आपको यही सूट करता है
जी हाँ हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ –
मैं तरह-तरह के, किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

जी वैसे तो यह प्यार-फ़रोशी ठीक नहीं है
पर फिर भी आख़िर बिजनेस है, कोई भीख नहीं है
फिर इस बाज़ारू युग में जी इतना तो बहुत ज़रूरी है
इस लाभ-शुभी ढ़ाँचे में यह क्रय-विक्रय तो मजबूरी है
यहाँ ज्ञानों की, विज्ञानों की नीलामी बोली जाती है
यहाँ सच्चाई भी सोने के सिक्कों से तोली जाती है
यहाँ आस नहीं, उम्मीद नहीं, यहाँ ख़्वाब खरीदे जाते हैं
साहित्य-कला ही नहीं दिलोदीमाग़ ख़रीदे जाते हैं
जब न्याय यहाँ बिकता है, ईमान यहाँ बिकता है
खुले आम आवाज़ लगा इन्सान यहाँ बिकता है
तब कौन ग़ज़ब हो गया अगर मैं प्यार बेचती हूँ !
जी हाँ हुजूर मैं प्यार बेचती हूँ –
मैं तरह-तरह के किसम-किसम के प्यार बेचती हूँ !

विष–पुरुष

पास मत आओ मेरे
मुझसे न पूछो बात कोई
मत बढ़ाओ हाथ मेरी ओर तुम सम्पर्क का –
मैं विष–पुरुष हूँ।

बहुत संक्रामक हुआ करते हैं नीले ज़हर के कीड़े
कहीं ऐसा न हो
इस ज़हर की लहरें
तुम्हारी धमनियों के रक्त में भी उमड़ने लग जाँय
आग :
अन्तर में दबाए हूं जिसे मैं
झपट कर कोई लपट उसकी तुम्हें छूले
कि वे चिन्गारियां जो
युगों से सोयी हुई हैं सर्द सांसों में तुम्हारी
आज फिर जग जाँय
इसलिए मुझसे बचो
ओ वर्तमान को ज्यों का त्यों स्वीकार
ज़िन्दगी जी लेने की बात सोचने वालो !
आजकल विष बांटता हूँ मैं !!

●●●

ये सपने : ये प्रेत

मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सांस नहीं लेने देते हैं -
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मेरे सपने !
मैं इनसे अभिभूत जुल्म के अंगारों पर चल लेता हूँ
मैं इनसे आविष्ट आंधियों-तूफानों में पल लेता हूँ
प्रेतों से ये मेरे सिर पर चढ़े हुए हैं मेरे सपने !
मुझे घेर खड़े हुए हैं मेरे सपने !!

सपने : जिनको जन्म दिया था मैंने
दुनिया की तीखी नज़रों से छिपा-बचाकर
पाला था
पोसा था
बड़ा किया था
अब मुझसे आकार मांगते :
जीने का, सच बनने का अधिकार मांगते
जैसे किसी गरीबिन माँ के भूखे बच्चे
उसका आंचल खींच खींच कर
मांग रहे हों उससे रोटी -
ऐसे पीछे पड़े हुए है मेरे सपने !
मुझे घेर कर खड़े हैं मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सांस नहीं लेने देते हैं -
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मेरे सपने !!

कभी कभी मेरा हारा मन
दुनिया के सारे नियमों से समझौता कर
सीधे सादे ढर्रे से जीवन जीने की
बात सोच लेता है, लेकिन -
ये अवैध जनवादी सपने
संघर्षों के आदी सपने
सब समझौते तुड़वाते हैं
और मुझे हर ज़ोर-जुल्म के

बेइन्साफ़ी के खिलाफ़ ये
भुजा उठा कर लड़वाते हैं
– ऐसे पीछे पड़े हुए हैं मेरे सपने !
मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सांस नहीं लेने देते हैं –
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मेरे सपने !!

●●●

बिना कुदाल उठाए

इस शैतानों की बस्ती में इन्सान का रहना मुश्किल है !
इक जुल्म तो सह भी लें लेकिन हर जुल्म को सहना मुश्किल है !

सब ओर फ़रेबों की उलझन, सब ओर भ्रमों के जाल बिछे
इस मज़हब के घनचक्कर में ईमान का रहना मुश्किल है !

होठों पे लगे हैं ताले औ' आवाज़ बिचारी कैदी है
पूरा अफ़साना दूर यहां इक लफ़्ज भी कहना मुश्किल है !

विश्वास क़लम पर काफी है, हथियार कारग़र है यह भी !
पर बिना कुदाल उठाये ये दीवारें ढहना मुश्किल है !

●●●

अस्ति–नास्ति संवाद

''किस अभागे को अरे इस धूप में दफ़्ना रहे हो
और इसकी मौत पर क्यों खुशी से चिल्ला रहे हो
कौन है ऐसा बिचारा, दो बता ?''

''मर गया ईश्वर, नहीं तुमको पता ?''

''मर गया ईश्वर ?
ईश्वर कि जिसने स्वयं अपने हाथ से धरती बसायी
चांद औ' सूरज बनाये
पर्वत के, झीलों के, सागर औ' द्वीपों के नक्श उभारे
ऊँचे-ऊँचे गिरि-शिखरों पर बर्फ जमायी
औ' उनकी लम्बी छाँहों में
नदियों के डोरों से सी कर
वन, उपवन, ऊसर, परती की भूरी-हरी थिगलियों वाले
कंथे से मैदान बिछाये –
ईश्वर कि जिसने आदमी पैदा किया
क्या वही अब मर गया ?''

''हाँ मर गया ईश्वर कि उसके त्रास सारे मर गये
सृष्टि के आरम्भ से चलते हुए
आदमी के खून पर पलते हुए
अन्याय के इतिहास सारे मर गये !

''मर गया ईश्वर कि उसके धर्म सारे मर गये
स्वर्ग-नरक के, पाप-पुण्य के
पुनर्जन्म औ' कर्मवाद के मर्म सारे मर गये।

''मर गया ईश्वर, विषमता का सहायक मर गया
आदमी के हाथ में ही आदमी का भाग्य देकर
विश्व का दैवी विधायक मर गया
मर गया ईश्वर !''

''यह हुआ कैसे मगर ?''

''सांइस की किरणों ने मारा, मर गया
वहम का पर्दा उघाड़ा, मर गया
आदमी ने जब तलक पूजा अंधेरे में उसे, ज़िन्दा रहा
रोशनी के सामने ज्यों ही पुकारा, मर गया !''

''ख़ैर, अच्छा था बिचारा मर गया !''

●●●

मीरा नहीं हो तुम

मीरा नहीं हो तुम
न मैं ही हूं तुम्हारा गिरिधर लीलाधाम
तुम्हारे ओठ छूकर भी
ज़माने का ज़हर अमृत नहीं होता
न मेरे चाहने भर से ही बनता है
तुम्हारी ओर बढ़ता सांप, शालिग्राम।
इसलिये तुम ज़हर का प्याला उठा कर
आज राणा के ही होठों से लगाने के लिए जी कड़ा करलो
और मैं ?
मैं अभी इस सांप का सिर कुचलता हूं !

●●●

पृष्ठभूमि

ज़र्द है चांद का मायूस चेहरा
रह-रह कर खांस उठता है
दमे का मरीज़ बूढ़ा आसमान

उधर अपना ग़म ग़लत कर रहे हैं सितारे
शराब की तल्ख घूंटों में
और इधर
भूख से कुलबुलाती हुई ओस की दुधमुंही बूंदें
अपने अस्तित्व की भीख मांग रही है।

फुटपाथों पर ठिठुर रहा है बेघरबार सन्नाटा
बेरोज़गारी से तंग उजाला
रेल की पटरी पर कट कर मर गया है।

अपने कसमसाते हुए प्यार को पाबन्दियों के किनारों में जकड़े
करवटें बदल रही है
हिस्टीरिया से पीड़ित झीलें
पहाड़
अपने पौरुष की लाश पर पुराने संस्कारों की बर्फ़ का कफ़न डाले
मातम मना रहे हैं।

अकेला चीख रहा है कुंवारी रात का अवैध बच्चा
बादलों की जवान बेटियां
जिस्म की दूकान कर रही है
पत्थरों को पूज रहीं हैं मासूम कलियाँ
फूलों को परेड मैदानों में पंक्तिबद्ध करके
संगीनें भोंकने की दीक्षा दी जा रही है।

हथकड़ियों से जकड़ी हुई हैं पेड़ों की शाखें
बेलों की सांसों पर पहरा लगा है।
सुरक्षा-अधिनियम में गिरफ्तार कर लिये गये हैं झरने

आंधियों के आन्दोलनों को मशीनगनों से भूना जा रहा है।

टीयर गैस से आक्रान्त हैं दिशाओं की आँखें
धरती का एक-एक जोड़
दर्दा रहा है -
शायद कोई सबेरा
क्षितिज के गर्भ में छटपटा रहा है !

●●●

दुनिया : एक वेइंग मशीन

लगता है यह दुनिया
एक लम्बी चौड़ी वेइंग मशीन है
इसके प्लेटफ़ार्म पर जब आप खड़े होते हैं
इसका लाल और सफेद चित्तियों वाला चक्का तो घूम जाता है
पर आपका वज़न आंकने वाला टिकिट
यह तब तक इशू नहीं करती
जब तक कि आप इसके मुंह में पैसा न डालें।

●●●

सपनों के बाग

मेरे पास नहीं है कोई चीज़ तुम्हें देने को साथी
मैं तो बस केवल ख्वाब लुटाया करता हूँ –
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूँ।

लो यह सपना तुम नयी सुबह की लाली का
यह सपना खेतों की साझी हरियाली का
यह मिल पर सब मज़दूरों के हक़ का सपना
यह नयी ज़िन्दगी और नये जग का सपना
यह दुनिया के सब लोगों के हिलमिल कर रहने का सपना
यह देशों-रंगों-नस्लों की दीवारें ढ़हने का सपना
यह मंदिर-मस्जिद-चकलों-पागलखानों बिना
समाज चलाने का सपना
यह जेल-कचहरी, फौज-पुलिस के बिना
जगत का राज चलाने का सपना
यह सपना जिसमें हर मानव स्वाधीन और सक्षम होगा
हर भेद-भाव होगा समाप्त, मानव मानव के सम होगा
ये सब सपने सच बनने को बेताब, लुटाया करता हूँ
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूँ।

यों स्वप्न लुटाने वाले तो बहुतेरे हैं
लेकिन कुछ अलग तरह के सपने मेरे हैं
कुछ सपने बूढ़े औ' बीमार हुआ करते हैं
कुछ लूले-लंगड़े होते हैं, बेकार हुआ करते हैं
कुछ सपने बेबस होते हैं जो महज आह भरते हैं
कुछ हिम्मत वाले चट्टानों को तोड़ राह करते हैं,
कुछ सपने मन के चोर हुआ करते हैं, छिपकर रहते हैं
कुछ सपने बाग़ी होते हैं, जो कहना हो सो कहते हैं
कुछ सपने किसी एक की कुंठाओं की सृष्टि हुआ करते हैं
कुछ सपने सारे युग-समाज की दृष्टि हुआ करते हैं
मैं लुटा रहा हूँ सबको ऐसे सपने
जो सबके साझे हैं, सबके हैं अपने

कविता की धरती पर मैं, सपनों के बाग़ लगाया करता हूँ
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूँ।

यह जीवन क्या है? कुछ सपनों का मेला है
इन्सान हमेशा सपनों से ही खेला है
ये सपने ही हैं जो उसके कदमों की ताक़त बनते हैं
ये सपने ही हैं जो उसके तन मन की कुव्वत बनते हैं
ये सपने ही इन्सानों की रूहों को हरारत देते हैं
इन्सान नहीं ये सपने ही इन्सां को बग़ावत देते हैं
ये सपने हैं जो दुनिया को हर बार संवारा करते हैं
सपनों के बल पर लोग यहाँ हर जुल्म गवारा करते हैं
सपनों के बिना इन्सान महज कुछ सांसों का पुतला सा है
सपने न बुलन्दी दें जो इसे, इन्सान बहुत छोटा-सा है
ये सपने दिन का उजाला हैं, और सांझों के सिन्दूर हैं ये
ये सपने चांद हैं रातों के, बेबाक सुबह के नूर हैं ये

मैं स्याह अंधेरी रातों में महताब उगाया करता हूँ
हर मुर्दा दिल में फिर जीवन की आग जलाया करता हूँ।

●●●

हारे हुए सिपाही का वक्तव्य

मेरे दोस्तो !
मेरे रफ़ीको !
मेरी बग़ावत के बाजू अगर टूट रहे हैं
तो इन्हें टूटने दो
शायद अब कभी मैं
जुल्म के ख़िलाफ़ अपने हथियार नहीं उठा पाऊंगा
लेकिन देखना
कहीं मेरे बच्चों के नन्हें बाजुओं पर कोई चोट न आए
क्योंकि कल
नये सूरज को उन्हीं के कन्धों पर से उग कर आना है –
मेरे बाजू अगर टूट रहे हैं तो इन्हें टूटने दो !
मेरे दोस्तो !
मेरे साथियो !

मेरे विश्वास के पांव अगर लड़खड़ा रहे हैं
तो इन्हें लड़खड़ाने दो
शायद अब कभी इनकी धमनियों में वह गर्म खून नहीं उमड़ेगा
लेकिन ख़याल रखना
कहीं दुश्मन मेरे बच्चों के मासूम पांवों को
लोहे के तंग जूतों से न जकड़ दें
क्योंकि कल
उन्हीं पांवों के बल पर इतिहास को आगे बढ़ना है –
मेरे दोस्तो !
मेरे रफ़ीको !

मेरे स्वाभिमान की कमर अगर झुक रही है
तो इसे झुकने दो
शायद अब कभी मैं
दुश्मन के सामने सीना तान कर खड़ा नहीं हो सकूंगा
लेकिन होशियार !
कहीं वे लोग मेरे बच्चों के सिरों पर मुर्दा परम्पराओं का बोझ लाद

उन्हें बौने न बना दें
क्योंकि कल
इन्सानियत उन्हीं के जिस्मों में अपनी तस्वीर देखेगी –
मेरी कमर अगर झुक रहीं है तो इसे झुकने दो !

मेरे दोस्तो !
मेरे साथियो !
मेरे विवेक की आंखें अगर बारूद के ज़हरीले धुएं से धुंधला रही हैं
तो इन्हें धुंधलाने दो
शायद अब इनके ओठों पर कभी
रोशनी की प्यास नहीं तड़पेगी
मगर सावधान !
कहीं मेरे बच्चों की भोली आंखों पर ये लोग
अपने रंगीन चश्मे न चढ़ा दें
क्योंकि कल
ज़माने का कारवां उन्हीं की आंखों से अपनी राह ढूंढेगा –
मेरी आंखें अगर धुंधला रही हैं तो इन्हें धुंधलाने दो !

मेरे दोस्तो ! मेरे साथियो !! मेरे रफ़ीको !!!

●●●

सांसें और सपने

देवदत्त भाई ! चाहो तो
मेरी सांसों के सीने में कोई शस्त्र भोंक दो
लेकिन मेरे
व्योम-विहारी
सपनों के कोमल हंसों को
तीर मार कर नहीं गिराओ।

सांसों पर ज़िन्दा हूं लेकिन
सांसों का विस्फार सपन में ही संभव है
धरती है आधार, मगर विस्तार गगन में ही संभव है
क्योंकि ज़िन्दगी
सांसों की सपनों के साथ सगाई
धरती और गगन का गठबन्धन है !

सपन न छीनो
गगन न छीनो
मुझसे मेरी
बढ़ने की, चढ़ने की लगन न छीनो
भले बाँध लो जंजीरों से मुझको लेकिन
मेरे पंख-सधे आदर्शों की उड़ान में
सीमाएं बन कर मत आओ !

देवदत्त भाई चाहो तो
मेरी सांसों के सीने में कोई शस्त्र भोंक दो
लेकिन मेरे व्योम-विहारी सपनों के कोमल हंसों को
तीर मार कर नहीं गिराओ !

●●●

फ़ाउस्ट के कन्फ़ॅशन

अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए
मैंने अपनी आत्मा को रेहन रखा था
सोचा था :
कि जब फिर मेरे पास पर्याप्त शक्तियां हो जाएंगी
उसे छुड़ा लूंगा
लेकिन मुझे क्या पता था
कि ज्यों-ज्यों मेरी शक्तियां बढ़ती जाएंगी
शैतान का कर्ज भी बढ़ता ही चला जाएगा
और आखिर जब मैं उसे छुड़ाने लायक हुआ
मेरी आत्मा नीलाम हो चुकी थी।

अपनी मिट्टी के बचाव के लिए
मैंने अपने विद्रोह को सुलाया था
सोचा था :
जब मैं फिर लड़ने लायक हो जाऊंगा
उसे जगा लूंगा
लेकिन मुझे क्या मालूम था
कि वह अफ़ीम जो मैंने उसे सुलाने के लिए दी थी
उसके लिए ज़हर साबित होगी
और आखिर जब मैं लड़ने लायक हुआ
मेरा विद्रोह मर चुका था।

उफ़ !
जिसे आपद्धर्म की तरह स्वीकार किया था
उसे जीवन-दर्शन बनाने के लिए मजबूर हुआ !!
अब मैं भटक रहा हूँ
अपने आत्मा-हीन अस्तित्व के कन्धों पर
अपने असफल विद्रोह की लाश रखे हुए
ताकि देख लें मेरे हम-सफ़र
समझ लेंः
कि किस तरह समझौता
- एक सामायिक समझौता भी -
विद्रोह की आत्मा को तोड़ देता है।

एक हिन्दुस्तानी लड़की : अपने मन से

सुन रे मेरे मन !
इतना मत तन
पहले इधर देख
फिर करना मीन-मेख
सुन, यह है तेरा पति
इसके सिवा नहीं तेरी गति
इसको कर प्यार
अपने को मार
हिम्मत न हार
फिर कोशिश कर एक बार
आखिर इसी से है काम
या करेगी अपने पुरखों का नाम ?

देख, अपने देश का तो ढंग ही यही है
सदा से यही रीति चलती रही है
कि पहले किसी से भी शादी करो
फिर अपने जो हिस्से आये, उसी पर मरो
तू भी मरना सीख
तुझसे मैं मांगती हूं भीख
आखिर इस बिचारे में कौन सी बुराई है
माँ-बाप ने देख-सुनकर ही आखिर तुझे ब्याही है
फिर औरत को
किसी न किसी मर्द से तो झुकना ही पड़ता है
तब इसी से झुकने में क्या फ़र्क पड़ता है
सोच ले अब तू बस इसकी परिणीता है
यह राम है तेरा, तू इसकी सीता है
पर यह राम हो, न हो, तुझे सीता रहना है
इसका ही होकर रहना है, अगर जीता रहना है
भले घर की लड़कियों का यही है ढंग
जैसे काली कामरी चढ़े न दूजो रंग।

प्रमथ्यु : इतिहास की राह पर

पुराणों में एक प्रमथ्यु था
जिसने स्वर्ग से आग चुरा कर मनुष्यों को दी थी
और देवताओं के राजा जुपीटर ने उसे चट्टान से बंधवा दिया था।

इतिहास में भी प्रमथ्यु होते हैं
लेकिन इतिहास में आग चुराना और चट्टान से बंधना जरूरी नहीं
क्योंकि कोई कोई तो आग चुराता नहीं, छीनता है
जुपीटर के द्वारा बन्दी नहीं बनाया जाता
उसे हरा कर भगा देता है
और आग के साथ ही साथ
जुपीटर के महलों का भी मालिक बन जाता है
तब उसे आग धरती पर ले जाकर
मनुष्यों को देने की जरूरत नहीं पड़ती
वह खुद स्वर्ग में आकर रहने लगता है
और आग
फिर इस नये जुपीटर के महलों में बन्द छटपटाती रहती है
और धरती –
अंधेरे में भटकती हुई व्याकुल धरती –
फिर किसी नये प्रमथ्यु का इन्तज़ार करती रहती है।

●●●

इतनी सपाट ज़िन्दगी

कोई ख़त
कोई अखबार नहीं
घुप्प जमा हुआ अंधेरा है, चुप्पी है
कोई शोला, कोई लपट, कोई अंगार नहीं।
कोई स्नेह-सिक्त शब्द
कोई रोमांचक संदेश
कोई प्रफुल्ल कपोल
कोई प्रशस्त ललाट
कोई उठी हुई मुट्ठी
कोई कड़कती हुई आवाज़
कहीं भी कुछ भी तो दुर्निवार नहीं।

कोई दुस्साहसपूर्ण काम
कोई उछाल देने वाली खबर
किसी ऐतिहासिक परिवर्तन का
कोई भी आसार नहीं !

दूर-दूर तक कोई पत्ता तक नहीं खड़कता
इतनी सपाट इतनी मुर्दा जिन्दगी
इतनी उदास इतनी वीरान राहें
कब तक ?
आखिर कब तक ?

●●●

इकारस

मेरे नये और नन्हें साथियो !
तुम जो अपने-अपने क्रीट द्वीपों के कैदखानों से
उड़ाने भरने के लिए तैयार खड़े हो,
और मुझसे मेरे अनुभव पूछ रहे हो,
मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ
कि तुम्हें क्या बताऊँ ?

कभी सोचता हूँ कि
तुम्हें बताऊँ
कि कितने कमजोर होते हैं मानवीय साहस के पंख
कितना ऊँचा हैं यह आकाश
कितनी गर्म होती है यथार्थ के सूर्य की किरणें
और कितना द्रवणशील होता है वह आदर्शों का मोम
जिससे हम अपने पंख अपने शरीरों से जोड़ते हैं।

कभी सोचता हूँ कि तुम्हें बताऊँ
कि हर ऊँची उड़ान का अन्त
पिघले हुए मोम और टूटे हुए डैनों में होता है
कि वे बांहें
जो अपनी सीमाओं में आकाश को घेर लेना चाहती हैं
टूट कर समन्दर में बिखर जाती हैं।
लेकिन फिर सोचता हूं
कि यदि यह सब कुछ निश्चित भी हो
यदि मोम का पिघलना और पंखों का टूटना
एक सार्वभौम सत्य भी हो
तो भी मुझे क्या अधिकार है
तुम्हारी कसमसाती हुई बांहों को निराश करने का
तुम्हारे फड़कते हुए डैनों का विश्वास छीनने का।
क्या अधिकार है
उड़ान के उस आनन्द से तुम्हें वंचित रखने का
जो शायद हर परिणाम के बावजूद

ज़िन्दगी की सबसे बड़ी सार्थकता है।

फिर क्या मालूम
शायद तुम्हारे डैने मेरे डैनों से ज्यादा मजबूत हों
तुम्हारा मोम कम द्रवणशील हो
तुम्हारा सूर्य उतना प्रचण्ड न हो
तुम्हारा आकाश तुम्हारी उड़ान के प्रति उतना क्रूर न हो
शायद तुम्हारी बाँहें
आकाश को अधिक देर तक घेर कर रख सकें।

इसलिए
मेरे नये साथियो !
मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं
ज़रा सूरज का ध्यान रख कर उड़ना !

मेरे आसपास के लोग

मेरे आसपास बड़े सभ्य लोग रहते हैं
ये, जो पानी को तो कई-कई बार छानते हैं
पर ज़हरीली परम्पराओं को आंखें मीच कर पी जाते हैं।
रोटी की पवित्रता का तो पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं
पर सिद्धान्त जूठे ही खा लेते हैं।
सब्जी तो हमेशा ताजी ही काम में लाते हैं
पर आदर्श बासी ही अपना लेते हैं।
कपड़े तो खुद सिलवा कर ही पहनते हैं
पर विचार रेडिमेड ही खरीद लेते हैं।
मकान तो अपना बनवाया हुआ ही पसन्द करते हैं
पर विश्वास किराये पर लेकर ही काम चला लेते हैं
कितने सभ्य हैं मेरे आसपास के लोग !!

●●●

माध्यम

मैं माध्यम हूँ।
मैं उन सबकी भटकती हुई आत्माओं का माध्यम हूँ
जो अधूरे और अतृप्त मर गये
मेरे कंठ में उनके स्वर हैं
जिन्होंने सारी ज़िन्दगी निःशब्द गुज़ार दी
मेरी क़लम में उनकी आग है
जो अपनी आग अपने दिलों में दबाए हुए ही चले गये
मेरे गीतों में उनका विद्रोह है
जिनकी गर्दनें उठने से पहले ही झुका दी गईं
यह मैं नहीं उनकी आत्माएं बोल रही हैं !

जब मैं बोलने के लिए अपना मुँह खोलता हूँ
कुछ भटकते हुए शब्द मेरे आसपास मंडराने लगते हैं
ये उस अंग्रेज लेखक क्रिस्टोफ़र कॉडवेल के शब्द हैं
जिसने स्पेन की आज़ादी की लड़ाई में अपनी ज़िन्दगी दे दी थी
ये पौलेण्ड के उन हजारों मूक यहूदियों के शब्द हैं
जिन्हें ज़िन्दा दफ़्नाने के लिए
खुद उन्हीं के हाथों से कब्रें खुदवायी गयी थी
आसविट्ज के गैसचेम्बरों में घुटी हुई ये लाखों आवाज़ें
अब खुले आसमान में विचर कर
लोगों के कानों तक पहुँचना चाहती हैं !

मैं माध्यम हूँ !
जब मैं लिखने के लिए अपनी क़लम उठाता हूँ
एक आग मेरी क़लम को घेर कर खड़ी हो जाती है
यह आग अल्ज़ीरिया की उस जवान विद्रोहिणी जमीला की आग है
अमानुषिक अत्याचारों के बल पर
जिससे वे सब अपराध स्वीकार कराए गये हैं
जो उसने कभी नहीं किये
यह सीक्रेट आर्मी की शिकार
उन हज़ारों अल्जीरियाई मशालों की आग है

जिनकी ज़िन्दगियां
फ्रांसिसी साम्राज्यवादियों की नज़रों में
बोर्ड पर लिखी हुई संख्याओं से ज्यादा क़ीमत नहीं रखतीं
यह आग चाहती है कि मैं इसे कागज़ों के पृष्ठों पर उतारता जाऊँ
और कागज़ों के पृष्ठों से वह लोगों के दिलों तक पहुँचती जाय !

मैं माध्यम हूँ
टूटी हुई आवाज़ों और दबी हुई चिन्गारियों का माध्यम !

जब मैं अपना साज़ संभालता हूँ
एक दर्द मेरे आसपास आकर जमने लगता है
यह कांगो के बेताज़ बादशाह लुमुम्बा का दर्द है
जो मेरे साज़ को उदास और मेरी आवाज़ को ग़मग़ीन बना रहा है
यह कांगो की आज़ादी के उस सिपाही का दर्द है
जिसे निहत्था करके गोली मार दी गयी
और कांगो के जमे हुए खून में एक उबाल भी न आया !

मैं जब अपनी पलकें उठाता हूँ
कुछ घायल और बेतरतीब सपनों को
अपने आसपास मंडराते हुए पाता हूँ
ये तेलंगाना के उस बूढ़े किसान के सपने हैं
जिसने जमीनों पर जोतने वालों का अधिकार चाहा था
और इसके ईनाम में जिसके हाथ पैर काट दिये गये थे
ये उन एक सौ आठ बाग़ी किसानों की पलकों के सपने हैं
जिन्होंने अपनी पकती हुई फसलों
और जवान होती हुई बेटियों को
लुटेरे हाथों से बचाने के लिए
बन्दूकें उठा लीं थीं
और जिनकी पलकें फांसी के तख्तों पर लाकर मूंद दी गई
ये तेलंगाना के उस नन्हें से विद्रोही गांव की
सैकड़ों स्त्रियों और बच्चों के सपने हैं
जिसे हिन्दुस्तानी सरकार के बहादुर सिपाहियों ने
घेर कर आग लगा दी थी
ये सपने चाहते हैं

कि मैं इन्हें दुनिया के एक-एक इन्सान की पलकों तक पहुँचा दूँ !
मैं माध्यम हूँ
बेताब दर्दों और घायल सपनों का माध्यम !

जब मैं सोचना चाहता हूँ
एक भयानक पागलपन मेरे दिमाग को चारों ओर से जकड़ लेता है
यह उस अमेरिकी पायलेट का पागलपन है
जिसे हिरोशिमा पर एटमबम गिराने का आदेश दिया गया था
और जो इस भीषण नरमेध का प्रायश्चित
अमेरिकी पाग़लखानों में कर रहा है
यह पागलपन व्याकुल है
कि मैं इसे दुनिया के हर जंगबाज़ नेता
और उसके हर वफ़ादार सिपाही के दिमाग़ तक पहुँचा दूँ।

मैं माध्यम हूँ
और जब ये शब्द, यह आग और ये सपने मेरे आसपास मंडराते हैं
मैं अपने क्षुद्र से व्यक्तित्व को भूल जाता हूँ
और मुझे लगता है कि मैं ही वह अंग्रेज़ लेखक हूँ
अल्ज़ीरिया जमीला हूँ
मैं ही रबर की तरह जमी हुई कांगो की आत्मा को
हिलाने की कोशिश करने वाला लुमुम्बा हूँ
आग में जिन्दा जलती हुई स्त्रियों और बच्चों की ये दर्दनाक चीखें
मेरे ही भीतर से उठ रही हैं
मैं ही वह पवित्र पागलपन से आक्रांत अमेरिकी पायलेट हूँ
ये सब मेरे ही भीतर जी रहे हैं।
मैं माध्यम हूँ !

●●●

भूकम्प

तेजी से बढ़ रहा समय है
और कलेण्डर पिछड़ रहे हैं
काफ़ी आगे निकल गया है
जल्दी जल्दी कदम उठाने वाला नया बसन्त
और अब पीछे-पीछे हाँफ़ रही है भारीकदम बसन्तपंचमी।
आंक नहीं पाता यह तारीखों-माहों-बरसों का ढाँचा
समय-चाल को ठीक-ठीक से
सोमवार को अभी कलेण्डर सत्रह ही तारीख बताता
लेकिन वह अट्ठारह, बीस, तीस तक पहुंच रही है।
ऊपर से ज्यों का त्यों दिखता अण्डे का यह खोल
कि जिसके भीतर का वह जीवन-अंकुर
अपनी गति में
खोल की सारी जड़ सीमाएं पीछे छोड़ चुका है।
और खोल जो अब तक उसका कवच था
अब जंजीर बन गया।
लेकिन देख रहे जो केवल मात्र खोल की मजबूती को
और नहीं जो बूझ रहे हैं
उसके भीतर उगती एक नई ताक़त को
जिस दिन वह टूटेगा
बहुत चौंक जाएंगे
घबरा कर पूछेंगे
एकाएक अचानक यह भूकम्प कहाँ से आया?

●●●

एक बाग़ी की स्वीकारोक्तियाँ

नफ़रत है मुझे अपने देश से
जहाँ बचपन भीख माँगते हुए जवान होता है
और जवानी गुलामी करते-करते बुढ़िया जाती है।
जहाँ अन्याय को ही नहीं
न्याय को भी अपनी स्थापना के लिए
सिफारिशों की जरूरत होती है
और झूठ ही नहीं
सच भी रोटरी मशीनों और लाउडस्पीकरों का मुहताज है
बेईमानी को ही नहीं
ईमानदारी को भी अपनी रक्षा के लिए
पैसों की ताक़त का सहारा लेना पड़ता है।
जहाँ क्राँति की योजनाओं जैसे उल्लास भरे प्रारम्भ वाले
प्यार का अन्त
किसी निकटतम साथी के मृत्युदंड का सा अवसादपूर्ण होता है
और भोर के टटके गुलाब की सी ताज़ा सुकुमार सुन्दरता
सीलन-भरी अँधेरी कोठरियों में घुट-घुट कर बुझ जाती है !
जहाँ पुस्तक-गर्भी अँगुलियाँ
बर्तन मांज-मांज कर घिस जाती हैं
और स्पुतनिक बना सकने वाले दिमाग़
पत्थर ढो-ढो कर भौंथरे हो जाते हैं !
जहाँ पृथ्वी की परिक्रमाएँ कर सकने वाली वेलन्तिनाएँ
भारी जेबों और ऊँची कुर्सियों के आसपास भिनभिनाने वाली
कीलरें बन कर रह जाती है।

नफ़रत है मुझे अपने धर्म से !
मेरा धर्म पत्थरों और पोथियों के आदेशों का धर्म है
फटे हुए कानों और नुचे हुए केशों का धर्म है
ज़िन्दा जलायी हुई सतियों और बधियाए हुए सन्यासियों का धर्म है
मुझे नफ़रत है अपने मठों और मन्दिरों से
जहाँ आतंक और अज्ञान को मूर्तियों में ढाल कर पूजा जाता है
नफ़रत है मुझे मिमियाते हुए होठों और जुड़ते हुए हाथों से

नफ़रत है मुझे घिसती हुई नाकों और झुकते हुए माथों से !

नफ़रत है मुझे अपनी सरकार से
जिसने रोटियों और भूखे हाथों के बीच पहरे लगा रक्खे हैं
कपड़ों और ठिठुरते हुए शरीरों के बीच
लक्ष्मण-रेखाएँ खींच रक्खी हैं
खाली मकानों और बेघरबार लोगों के बीच
दीवारें खड़ी कर रक्खी हैं
रोगियों और दवाओं के बीच कंटीले तार लगा रक्खे हैं
और किताबों और लोगों की आंखों के बीच
अँधेरे फैला रक्खे हैं !

हां, मैं बाग़ी हूँ
मुझे अपने देश, अपने धर्म और अपनी सरकार से नफ़रत है
मैं बाग़ी हूँ क्योंकि मुझे अपने लोगों से प्यार है
मैं इनके चेहरों पर बहार, इनके आंगनों में त्यौहार देखना चाहता हूँ
मैं बाग़ी हूँ, क्योंकि मुझे उन जंजीरों से नफ़रत है
जो इन्हें जकड़े हुए हैं
उन सीमाओं से नफ़रत है, जो इन्हें बाँटे हुए हैं !

●●●

सिर्फ़ एक शब्द नहीं !

'कॉमरेड' !
सिर्फ एक शब्द नहीं,
बिजली की लाखों रोशनियों को एक साथ जला देने वाला एक स्विच है
जिसे दबाते ही
रंग बिरंगी रोशनियों की एक विश्व-व्यापी कतार जगमगा उठती है !
एक स्विच, जो वाल्ट व्हिटमॅन को मायकोवस्की से
और पाब्लो नेरूदा को नाज़िम हिक़मत से मिला देता है,
मॅक्सिम गोर्की, हावर्ड फ़ास्ट और यशपाल के बीच
एक ही प्रकाश-रेखा खींच देता है !

'कॉमरेड' !
सिर्फ़ एक स्विच नहीं, एक चुम्बन है !
एक चुम्बन, जो दो इन्सानों के बीच की सारी दूरियों को
एक ही क्षण में पाट देता है
और वे इसके उच्चारण के साथ ही
एक दूसरे से यों घुलमिल जाते हैं
जैसे युगों से परिचित दो घनिष्ठ मित्र हों !
एक चुम्बन, जो कांगो की नीग्रो मज़दूरिन
और हिन्दुस्तान के अछूत मेहतर को
एक क्षण में लेनिन के साथ खड़ा कर देता है !
एक अदना से अदना इन्सान को
इतिहास बनाने के महान् उत्तरदायित्व से गौरवान्वित कर जाता है !

'कॉमरेड' !
सिर्फ़ एक चुम्बन नहीं, एक मंत्र है
जो बोलने वाले और सुनने वाले दोनों को पवित्र कर देता है
एक मंत्र, जिसे छूते ही अलग-अलग देशों, नस्लों, रंगों
और वर्गो के लोग
एक दूसरे के सहज सहोदर बन जाते हैं !
एक रहस्यमय मंत्र
जो इन्सान की आज़ादी, बराबरी और भाईचारे के लिए

कुरबान होने वाले लाखों शहीदों की समाधियों के दरवाजे
सबके लिए खोल देता है
और साधारण से साधारण व्यक्ति उनकी महानता से हाथ मिला सकता है !

'कॉमरेड' !
दिलों को दिलों से मिलाने वाली एक कड़ी है,
शरीरों को शरीरों से जोड़ने वाली एक शृंखला है,
विषमता और भेदभाव के तपते हुए रेगिस्तान का एक मरुद्वीप है
जहाँ आकर जुल्म और अन्याय की आग में जलते हुए राहगीर
राहत की सांस लेते हैं,
एक दूसरे का हौंसला बढ़ाते हैं।

●●●

एक विराट पवित्रता

ठहरी रहो,
अपनी इन मृणाली बाँहों से मुझे घेर कर इसी तरह ठहरी रहो
जब तक कि तुम्हारे रोम-रोम से
वह अज्ञात सत्य सांसें ले रहा है
जब तक तुम्हारी आंखों में उसकी नीली गहराइयाँ हैं
तुम्हारे गाल उसकी रोशनी से रौशन हैं
तुम्हारे होठों पर उसका स्वाद है
तब तक मुझे घेरे रहो
उस विराट पवित्रता से मुझे छुए रहो
क्योंकि कुछ ही क्षण बाद
अपने आप तुम्हारा आलिंगन ढीला पड़ जाएगा
और हम दो टकराकर कौंध चुके बादलों की तरह
अपने-अपने घायल अस्तित्व को देख रहे होंगे
और सोच रहे होंगे
कि क्यों अब हमारी निकटता बिजली नहीं चमकाती।
और तब तुम्हारे चेहरे पर उभरती हुई मुस्कान में
मुझे बनावट नजर आएगी
और मेरे लहज़े से निकलती हुई अभिमान की गंध
तुम्हें असह्य लगने लगेगी
हम फिर स्वयम् के छोटे-छोटे घेरों में घिर कर रह जाएंगे
फिर तुम मेरे लिए किये गये त्यागों का हिसाब करने लगोगी
और मैं तुम्हारे लिए सुनी हुई प्रताड़नाएं गिनने लगूंगा
तुम मेरे किसी दोस्त की नकल निकालेगी
और मैं तुम्हारी किसी सहेली का मज़ाक उड़ाऊंगा,
फिर वही लेन-देन
हिसाब-किताब
शिकवा-शिकायत
शायद हमारी क्षुद्र आत्माएँ
उस विराट् को अधिक देर तक धारे नहीं रह सकतीं
इसलिए जब तक तुम्हारे स्पर्श में शिरीष के फूल खिले हुए हैं
तुम्हारे केशों में रातरानी की खुशबू है
तुम्हारी साँसों में इन्सानियत की गर्मी है
तब तक ठहरी रहो,
अपनी मृणाली बाँहों में मुझे इसी तरह घेर कर ठहरी रहो।

अभिशप्त आग

कितने सुखी हैं वे –
सुखी और सन्तुष्ट
जो हर रोज़ अपने मालिकों के लिए मेहनत करते हैं
और उसे फ़र्ज़ कहते हैं,
और वे, जो हर सांझ किसी पत्थर या पोथी के सामने नाक रगड़ते हैं
और उसे धर्म कहते हैं,
और वे जो हर रात किसी औरत के साथ सोकर गुज़ारते हैं
और उसे प्यार कहते हैं,
और वे, जो हर बार अपनी सरकारों के लिए शस्त्र उठाते हैं
और उसे देशभक्ति कहते हैं।

लेकिन मैं ?
उफ़ ! मेरे भीतर यह कौन सी अभिशप्त आग जल रही है।

●●●

एक द्वन्द्वात्मक स्थिति

वाद-प्रतिवाद

दर्द बड़ा है
गीत हैं ओछे
पूरा दर्द नहीं कह पाते,
प्यार बड़ा है
मीत है ओछे
पूरा प्यार नहीं सह पाते।

संवाद

दर्द कितना भी बड़ा हो
व्यर्थ है उसका बड़प्पन
जब तलक वह गीत में आता नहीं है
गीत कितना भी सुघड़ हो
व्यर्थ है उसकी सुघड़ता
जब तलक वह दर्द को पाता नहीं है !
प्यार कितना भी खरा हो
व्यर्थ है उसका खरापन
जब तलक वह मीत को भाता नहीं है
मीत कितना भी सुभग हो
व्यर्थ है उसकी सुभगता
जब तलक वह प्यार कर पाता नहीं है !

●●●

मॅरेलिन मनरो का अन्तिम पत्र

सुनो,
ओ दुनिया के सबसे सम्पन्न और सबसे सभ्य देश के भद्र नागरिको,
सुनो !
मैं जो अबतक सिर्फ तुम्हारे एयर-कंडीशण्ड टॉकीजों के पर्दो
या फिल्मी अखबारों के रंगीन पृष्ठों पर से ही बोलती रही हूँ
मैं जो अब तक ओढ़े हुए व्यक्तित्व ही तुम्हारे सामने रखती रही हूँ
निर्माताओं-निर्देशकों-संवादलेखकों के शब्द ही
तुम्हारे सामने दुहराती रही हूँ
आज तुम्हें अपने ही दिल और दिमाग़ से निकले हुए
अपने ही शब्दों से संबोधित कर रही हूँ।

सुनो, ओ अमेरिका के कला मर्मज्ञ फिल्म-निर्माताओं, निर्देशकों
आलोचकों और दर्शको !
तुमने मुझे हमेशा नींद की गोलियाँ दी हैं !
मेरी चेतना, मेरे विवेक, मेरे अहसास को सुलाया है
मेरे नारीत्व, मेरे व्यक्तित्व, मेरी आत्मा का होश छीना है
और मेरी भूख, मेरी प्यास, मेरे स्तनों और मेरे नितम्बों को उभारा है
मेरे होठों के रंग और मेरे बैंक-बैलेंस को शोखी दी है--
मेरे शरीर को जगाया है।
इस शरीर को जिसने अब मुझे पूरी तरह से लील लिया है
यह शरीर जो अब मेरे व्यक्तित्व का एक अंग नहीं,
उसका दुश्मन बन गया है।
और आज मैं इसे उन्हीं नींद की गोलियों से सुला दूंगी
जिनसे तुमने मेरी आत्मा को सुलाया था।

ओ मेरे अपने देश और दूसरे देशों के मेरे प्रशंसको !
मेरे सौन्दर्य के ग्राहको! मेरे अभिनय के सराहको!
मेरी तारीफ में छपी हुई तुम्हारे अखबारों की सतरें
तुम्हारे कलेण्डरों में टंगी हुई मेरे नंगे शरीर की तस्वीरें
मेरे नाम पर भरी हुई तुम्हारी आहें
मेरे उभारों पर भिनभिनाती हुई तुम्हारी आँखें

मेरे होठों की ओर फेंके हुए तुम्हारे चुम्बन--
ये सब मेरे आसपास इस तरह मंडरा रहे हैं
जैसे किसी गन्दे अधसूखे नाले के कीचड़ में पड़ी
किसी इन्सान की लाश के आसपास
घिनौनी मक्खियाँ, जौंकें और केंकड़े मंडरा रहे हों
और यह सब मेरे लिए असह्य है !

ओ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का ढिढोरा पीटने वाले मेरे देश के रहबरो !
मैं राजनीति नहीं जानती
समाज और व्यक्ति के उलझे हुए सम्बन्धों को नहीं समझती
पर एक सीधी सी बात पूछती हूँ
कि उन सब के लिए
तुम्हारी इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता का क्या मतलब है
जिन्हें तुमने व्यक्ति बनने का मौका ही नहीं दिया।
तुमने मुझे मात्र एक शरीर बनाकर रक्खा
एक शरीर : जो खूबसूरत है, जवान है, भोग्य है,
एक शरीर : जो किसी की माँ नहीं, बहिन नहीं, बेटी नहीं,
किसी की पत्नी, प्रेयसी, मित्र कुछ भी नहीं है
महज़ एक शरीर -
सैंतीस-तेईस-सैंतीस का एक मॉडल !

मेरी टेबिल पर कपड़े के दो खिलौने पड़े हैं
एक बाघ है और एक मेमना
कल ही मैं इन्हें खरीदकर लाई हूँ
कितना भयानक, कितना खूंखार है यह बाघ
और कितना मासूम, कितना निरीह है यह मेमना !
पता नहीं क्यों यह विचार मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है
कि यह मेमना मैं ही हूँ
और यह बाघ ?
--इस मासूम मेमने को निगलने वाला यह बाघ ?
मैं सही शब्द चुनना नहीं जानती
शायद यह तुम्हारा फिल्म उद्योग है
शायद तुम्हारे बाजार और बैंक हैं--
शायद.....शायद तुम्हारे समाज का यह ढाँचा है !

रात उदास है
और खिड़कियों पर जमती हुई बर्फ की फुहार में
किसी रहस्यमयपूर्ण षड्यन्त्र की फुसफुसाहट है
अब मेरे पास सिर्फ एक गोली बची है
आख़िरी और छत्तीसवीं गोली।
और इसके बाद मैं गहरी नींद सो जाऊंगी
ऐसी नींद जिससे मुझे कोई न जगा सकेगा !

मैं तुम सब की आभारी हूँ, ओ मेरे देश-वासियो !
मैंने इस छोटे से जीवन में बहुत कुछ पाया है
पैसा, प्यार, शोहरत, इज्ज़त सब कुछ
दस लाख डालर का बैंक-बेलेन्स,
बेवर हिल्स पर एक शानदार कोठी,
दसियों कारें और लाखों लोगों के आकर्षण का केन्द्र
यह शरीर !
मैंने अपने इस छोटे से जीवन में बहुत कुछ पा लिया है
सिर्फ एक छोटी सी इच्छा शेष है
कि कोई बिल्कुल अजनबी व्यक्ति
बिना मेरी शोहरत और सुन्दरता से प्रभावित हुए
बिना जाने कि मैं हालीवुड की रानी मुनरो हूँ
मुझे एक आइसक्रम खिला देता
या सहज स्नेह से सिर्फ
मेरे गाल थपथपा देता
...बस
अब मैं सो रही हूँ।

●●●

एक अर्से बाद

एक अर्से बाद
तुम्हें देखना
जैसे सारंगी पर रामनारायण से राग पीलू सुनना
वैसे ही सिकुड़ जाती हैं चेहरे की शिराएं
और कुछ-कुछ वैसी ही टीस अनुभव होती है
आंतों में कहीं गहराई पर !

तुम्हारे साथ चलना
जैसे रोएरिक के शोख रंगों के मायालोक में घूमना
वैसी ही अपने आप को हवा में बिखेर देने की सी इच्छा
एक खुशबू की तरह भार-मुक्त हो जाने की सी अवस्था।

तुम्हें प्यार करना
जैसे भारती की रंगीन गुलाबों की घाटियों में से गुज़रना
नसों के रेशमी तूफ़ानों के रास्तों से निकलना
और बादल-धुले कचनारों की नरमाइयों के आकाश में तैरना !

इतिहास का न्याय

(ट्राट्स्की की पुस्तक 'रूसी क्रान्ति का इतिहास' पढ़ते हुए)

वे सब जो विजयी होकर लौटे हैं,
ज़िन्दा बचे हैं,
सच्चे हैं, देशभक्त हैं, महापुरुष हैं;
वे सब जो हार गये,
खेत रहे,
झूठे थे, गद्दार थे, दुष्ट थे।

नीति कहती है :
सत्य की हमेशा जीत होती है
इतिहास कहता है :
जो जीतता है वह सत्य कहा जाता है।

बर्फ़ पिघलने के बाद भी

कैसे फिराते हो तुम मेरे शरीर पर अपनी अँगुलियाँ, प्राण !
कौन सा जादू भरा है इनमें
कि कस-कस जाते हैं
मेरे शरीर के सितार की सारी नसों के तार।
थिरक उठता है
मेरी नसों में शताब्दियों से सोया हुआ कोई आदिम संगीत
समन्दर की अदम्य लहरों की तरह
मंत्रमुग्ध सा तुम्हारी अँगुलियों के इशारों पर
और जाग-जाग उठती हैं
मेरे लहू की अथाह गहराइयों में बेहोश
प्रागैतिहासिक युग की हज़ारों कविताएँ।

कौन सा दर्द,
कौन सी आग भरी है तुम्हारी इन अंगुलियों में प्राण !
जो सैकड़ों रेगिस्तानों की व्याकुल प्यास
मेरे रोम-रोम में रख जाती है
कि जब मेरे अस्तित्व की जड़ रूप-रेखाएँ
चरमसुख के तरल बेसुध क्षणों में घुलने लगती हैं
और मैं तुम्हारी बाँहों की अभय देती हुई शाखाओं में
अपनी गरदन झुलाए हुए
एक अलसाई हुई लता की तरह खो जाती हूँ
तब भी मुझे लगता है :
कि अनलांघी घाटियों और पहाड़ों की क्वांरी बर्फ़ पर पड़े
पहले पद-चिन्हों की तरह
सदियों तक मौन सहती रहूंगी अपने वक्ष पर
संजो कर रक्खूंगी
तुम्हारी अँगुलियों से लिखे इन घावों को
बर्फ़ के पिघल जाने के बाद भी।

●●●

संवेदनाओं के क्षितिज

तुम ठीक कहती हो, प्राण !
सचमुच मैं तुम्हें पूरे दिल से प्यार नहीं करता
पर मैं पूरा दिल कहाँ से लाऊँ ?
मैं तुम्हें कैसे बताऊँ ?
कि जब मेरे दिल का एक हिस्सा
तुम्हारे प्यार में खोया हुआ होता है
उसका दूसरा हिस्सा
एक शत्रुतापूर्ण तूफ़ानी समुद्र में
अपनी मंज़िल की ओर बढ़ते जा रहे
एक छोटे से जहाज़ के साथ मंडरा रहा होता है
और वह जहाज़ है :
साम्राज्यवाद के समुद्र में नहीं डूबने का संकल्प लिये हुए क्यूबा।
और जब मैं तुम्हें अपनी गोद में लिटाये हुए
तुम्हारे केशों में अपनी अंगुलियां फिरा रहा होता हूं
मेरे विचार हाथों में बन्दूकें लिये
वियतनाम के घने जंगलों में घूम रहे होते हैं
और अमेरिकी हवाईजहाजों से बरसाये जा रहे
ज़हरीले बमों की किरचें
मेरे चेहरे को लहू-लुहान कर जाती हैं।

मैं तुम्हें पूरे दिल से प्यार कैसे करूँ ?
कि जब मेरे कन्धे पर सिर रख कर तुम सो रही होती हो
और कहती हो
कि इस तरह तुम्हारे कन्धे पर सिर रख कर
सोना मुझे इतना अच्छा लगता है
कि चाहती हूं कि जन्म-जन्मान्तर तक इसी तरह पड़ी रहूं
तभी मेरी आंखों में सुदूर अतीत का एक दृश्य कौंध जाता है :
हावर्ड फ़ास्ट के उस आदिविद्रोही स्पार्टकस का दृश्य
और छह हज़ार गुलामों की लाशें मेरे दिमाग़ में बिछ जाती हैं
और तुम्हारे मांसल गालों को छूती हुई मेरी अंगुलियों में
राइफ़ल के बोल्ट का एक कठोर स्पर्श जागने लगता है।

तुम ठीक कहती हो
सचमुच मैं तुम्हें कभी पूरे दिल से प्यार नहीं कर पाता
लेकिन प्यार ही क्यों ?
कोई खुशी, कोई ग़म भी तो मैं पूरे दिल से नहीं मना पाता
मेरी हर खुशी पर सैकड़ों अवसादों के साये हैं
और मेरे हर अवसाद की कारा में
सैकड़ों आशाओं की खिड़कियां :
कि जिस दिन मैं 'राहुल' के प्रकाशन की खुशी मना रहा था
साम्राज्यवाद का जुआ तोड़ फेंकने वाले
दो पड़ोसी देशों की सेनाएँ
हिमालय की बर्फ़ को इन्सानी खून से रंग रही थीं
कि अपनी नौकरी छूटने की खबर की उदासी
मैंने नाज़िम हिक़मत की कविता
'तुम्हारे हाथ और यह झूठ' से काटी थी
और कई महीनों की बेकारी और भटकन के बाद
जब मुझे फिर काम मिला
अल्जीरिया के स्वतंत्रता आन्दोलन को
सीक्रेट आर्मी आरगेनाइजेशन की हत्याएँ आतंकित कर रही थीं।

और उस दिवाली की रात तुम्हें याद है ना ?
जब हम मोमबत्तियों की क़तारों में
खिले हुए बच्चों की तरह खुश हो हो कर
फुलझड़ियां और पटाखे चला रहे थे
मैं एकाएक उदास हो उठा था
क्योंकि एक पटाखे की आवाज़
मुझे उन गोलियों की आवाज़ के करीब ले गयी
जिनसे बग़दाद की सड़कों पर
मेरे अरमानों के सीने दागे़ गये थे।

तुम ठीक कहती हो कि मैं...
लेकिन मैं क्या करूँ ?
जिन्दगी ने मेरी संवेदनाओं के क्षितिज इतने फैला दिये हैं
कि दुनिया के कोने-कोने में मैं अपने दोस्तों
और दुश्मनों को देख रहा हूं

मेरे दोस्त : जो मेरे दुश्मनों से
एक निर्णायक लड़ाई में जूझ रहे हैं
और पेरिस के किसी चौराहे पर
फहराता हुआ
मज़लूमों का एक बुलन्द इरादा
जंजीबार में उठी हुई मुट्ठियों का एक जुलूस
न्यूयार्क में रंगभेद के खिलाफ़ कड़कता हुआ एक नारा
मुझे इस तरह रोमांचित कर जाता है
जिस तरह महीनों की जुदाई के बाद तुम्हारा आलिंगन।
और टोकियो में एक मज़बूरन टूटी हुई हड़ताल
लियोपोल्डविल में एक गिरफ्तारी
सिंगापुर में झुकी हुई गर्दनों का
एक वापस लिया हुआ आन्दोलन
मेरे दिल पर अवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घण्टों तक किसी से बात भी नहीं कर पाता।

●●●

तुम नहीं हो

तुम नहीं हो
पर कमरे में फैली हुई है तुम्हारे चेहरे की गोरी चिकनी खुशबू
कि अचानक कोई पुस्तक पढ़ते-पढ़ते
अपने चेहरे के बहुत नजदीक महसूस होता है
तुम्हारा चेहरा
और मैं हठात् अपनी गर्दन पर से
तुम्हारी सांसों का गुद्‌गुदाता हुआ स्पर्श पोंछने लगता हूं।

तुम नहीं हो
पर कागज़ की रंग-बिरंगी नावों की तरह
तुम्हारे हल्के-फुल्के चुम्बन
मेरे कमरे की हवा में तैर रहे हैं।

रोशनदानों की राह से मेरे पास चले आते हैं कभी
दो नन्हें-नन्हें सफ़ेद कबूतरों की तरह
पंख फड़फड़ाते हुए तुम्हारे आलिंगन।

और धीरे से दरवाजे का पर्दा हटा कर
झांक जाते हैं अक्सर
तुम्हारे लाज से लाल समर्पण में पिघले हुए इरादे।

तुम नहीं हो पर तुम्हारे शरीर की ऊष्मा
अब भी मेरे बिस्तर में बसी हुई है
अब भी बिछा हुआ है मेरी किताबों पर तुम्हारा स्पर्श
बिखरी हुई गुलाब की ताजा पंखुरियों की तरह।

●●●

इसका मैं क्या करूँ

प्रकृति में प्रतिबिम्बित किसी परोक्ष सत्ता में मेरा विश्वास नहीं
पर मेरे भीतर बसा हुआ यह प्रकृति का अंश :
इसका मैं क्या करूँ ?

हिलोरें लेने लगता है मेरे भीतर का पानी
समन्दर की अदम्य लहरों के कोलाहल में
उमड़-उमड़ उठती है मेरे रक्त में बसी हुई आग
कुहरीले सबेरों में पूरब से निकलते हुए सूरज के साथ-साथ
और जब भी देखता हूँ
चाँदनी रातों में नदी के चमकते हुए कछार
लोट-पोट हो जाना चाहती है उनमें
मेरे भीतर की पृथ्वी।
उमग-उमग आता है मेरे अन्तस् का आकाश
सितम्बर की शामों के रंग-बिरंगे बादलचित्रों में विचरते हुए।
जाग उठती हैं मेरे भीतर सोयी हुई खुशबूएँ
वासन्ती हवाओं की प्रमदा सुगंधों के संगीत में।

और जब देखता हूँ
लोगों के एक समूह को एक साथ आन्दोलित होते हुए
एक क़तार में क़वायद करते हुए
एक लय में कुदालें चलाते हुए
तो मचल-मचल उठता है मेरा दिल
उनमें घुल-मिल जाने के लिए
जैसे बहुत देर से बिछुड़ा हुआ कोई बच्चा
अपनी माँ को देख कर
उसकी गोद में जाने को मचलता है।

इस संसार में परिव्याप्त
किसी अज्ञात चेतना में मेरा विश्वास नहीं
पर इस संसार के एक-एक अंग के साथ
मैं जो गहरी आन्तरिक एकता महसूस करता हूँ
उसका मैं क्या करूं ?
मेरे भीतर की इस आग और तरलता का
अपनी आँखों के आकाश और अपने हृदय की मनुष्यता का :
इनका मैं क्या करूं ?

एक नयी पुस्तक

थोड़ी देर मैं उसके आवरण को देखता रहा
एक दूसरे को संतुलित करते हुए दो शोख रंग।
आवरण में से उसकी चिकनी जिल्द का एक हिस्सा दिखाई दिया
उसे पूरी तरह से देखने के लिए उत्सुक होकर
धीरे-धीरे मैंने उसका आवरण हटा दिया
अब वह मेरे सामने थी : सुन्दर और सुडौल
हल्के बादामी रंग का रेशमी रेग्जीन
उसके पूरे शरीर पर मढ़ा हुआ था।

उलट-पलट कर उसे अच्छी तरह से देख लेने के बाद
- उसके गेटअप की प्रशंसा से परिपूर्ण -
मैं उसके मुखपृष्ठ की ओर बढ़ा।
कितने दिनों से मैं उसकी खोज में था !
आज का पूरा दिन मुझे
उसे पढ़ने में ही लगाना था।
मैंने प्रस्तावना शुरू कर दी
थोड़ी देर में मेरी अंगुलियां उसकी अनुक्रमाणिका पर थीं
मेरे जैसा सुहृदय पाठक पा कर
जैसे वह भी उत्फुल्ल थी
गुलाब की पंखुड़ियों की तरह उसने अपने सारे पृष्ठ
निस्संकोच मेरे सामने खोल दिये
और मैं एक के बाद एक अध्याय आगे बढ़ता गया।

बहुत देर उसमें डूबने-उतराने के बाद
अब मैं थकने सा लगा था
और कैसी सुखद स्थिति थी
कि वह भी समाप्ति के निकट आ गयी थी
यह देख कर मेरा उत्साह दुगुना हो गया
मेरी गति तेज हो गयी
और अन्तिम अध्याय, मैंने एक ही झपाटे में पूरा कर डाला।

अब मैं उसमें डूबा हुआ था
एक अनिर्वचनीय सुख में निमग्न
उसकी गहराइयों को छूता हुआ।

आह ! कितना आनन्ददायक था
उसे एक ही बैठक में अन्त तक पढ़ जाना
और फिर
उसकी मौलिकता और ताज़गी से अभिभूत
देर तक पड़े हुए उसके बारे में सोचते रहना।

पुष्पयोनि

एक गुलाब का फूल खिला है मेरे आंगन में
दो स्निग्ध कदली वृक्षों की संधि पर फैली हुई
गहरे काले रोमों से कंटकित एक टहनी पर।
दो तराशे हुए सुडौल ओठों सी
दो लम्बी चिकनी पंखुरियां
और उनके बीच
दो नन्हें नन्हें कोमल गुलाबी पुष्प दल।
पास ही कीलित कम्पनों की एक कंदर्प-कोंपल
छूते ही जाग उठती है जो
भीगे हुए पुष्ट मूंग के दाने में
उभरे हुए एक ताजा अंकुर की तरह !
और आदिम रहस्यों से पूर्ण
एक अगाध पराग कुंड !

बार बार डूबता हूं खुशबूओं की इस अतलान्त वापी में
और हर बार पूर्ण तृप्त होकर भी
अतृप्त बना रहता हूं।

●●●

प्रतिश्रुति का गीत

मैं आज के युग में जी रहा हूं
और आज की, एकदम आज की –
संक्रान्ति झेल रहा हूं
पर मैं असंगतियों और विद्रूपताओं के
विक्षेप और आत्महनन के गीत कैसे गाऊँ?
जबकि मेरे आसपास सब कुछ अंधेरा ही नहीं है।
तमाम दूरियों के बावजूद मेरे माता-पिता
अभी मेरे लिए बेगाने नहीं हुए हैं
अपने घर में
मैं अभी आउट साइडर नहीं हुआ हूं
मेरी पत्नी अभी मेरे लिए अजनबी नहीं बनी है
मेरे दोस्त अभी मेरी भाषा समझते हैं।

यह नहीं कि मुझे कभी अकेलापन नहीं सताता
पर अधिकतर मैं जब भी चाहता हूँ
अपने अकेलेपन को
अपने साथियों के कन्धों पर टाँग सकता हूं :
झोले में पड़ी एक पुस्तक की तरह
अपनी प्रिया की आंखों में खो सकता हूं :
स्वच्छ सरोवर में डुबकियां लगाते हुए
एक जलपक्षी की तरह
अपने विद्यार्थियों के चेहरों पर छिड़क सकता हूं :
गर्मी की किसी दोपहर में
ख़स से सुगन्धित ठंडे पानी की तरह
और अपनी किताबों के पन्नों पर बिखेर सकता हूं :
गुलाब की ताज़ा पंखुरियों की तरह
या नयी खबरों के आकाश में उड़ा सकता हूँ :
एक नन्हें से सफ़ेद कबूतर की तरह

और जब यह कुछ भी संभव न हो
तो किसी भी जाते हुए राहगीर के

पल्ले से बांध सकता हूं उसे :
रोटी और आचार की
एक छोटी सी पोटली की तरह !

लोग मुझे सीली हुई दियासलाइयों से असहाय कैसे लगें ?
जबकि मैं उन्हें देखता हूं :
लोगों के लिए लड़ते हुए
बिना टूटे जेलों में सड़ते हुए !
दुनिया मुझे सिफ़लिस से बज़बज़ाई हुई
मवाद चुआती हुई
मुट्ठियों में अपनी मौत की विरासत बांधकर जाती हुई
कैसे दिखाई दे ?
और क्यों लगें फुंसियों की तरह आकाश के तारे ?
जब कि फुंसियों और बीमार मनों
दोनों का ही इलाज संभव है !

मैं विक्षेप के विद्रूप
और मृत्यु के संत्रास की कविताएं कैसे लिखूं ?
जबकि सब बातों के बावजूद
मेरा देश अभी अमेरिका नहीं हुआ है
मेरी धरती अभी चमगादड़ों की दुर्गंधित गुफाओं
और बारूद के ज़हरीले धुएं से घुटे खंडहरों में नहीं बदली है
और न आकाश में मकड़ियों ने ही अपने जाले बनाये हैं
मेरी सभी हवाओं में अभी ज़हर नहीं घुला है
और न मेरी नदियां
बिलबिलाते हुए कीड़ों-भरी नाबदानों में ही बदली हैं
पागलखाने और चकले
अभी मेरे नगरों में ही हैं
मेरे नगर अभी पागलखानों और चकलों में नहीं गये हैं
लोग भूखों तो मरते हैं
पर अभी शमशान में ही ले जाकर जलाए जाते हैं
शमशान अभी घरों में नहीं उतरे हैं
मनुष्यों और मनुष्यों के बीच अभी बहुत कुछ शेष है
फूल अभी खिलते हैं

पक्षी अभी चहचहाते हैं
मेरे आसपास अभी बहुत सा उजाला है !

मैं चिटखे हुए मन
और टूटे हुए व्यक्तित्व के गीत कैसे गाऊँ ?
जबकि अपने व्यक्तित्व की हर दरार
मैं अपने इसी देश की मिट्टी से पूर सकता हूं
और अपने मन की हर चिटखन को
अपने इन्हीं लोगों के स्नेह से जोड़ सकता हूं।

यह नहीं
कि मैं अपने परिवेश की असंगतियों के प्रति अन्धा हूं
या कि मैं उसकी विरूपताओं को देखना नहीं चाहता
नहीं, मैं उन्हें देखता हूं
पर मैं सिर्फ उन्हें ही नहीं देखता
और न उनके गौरवगायन में
अपनी कविताओं को लगाना चाहता हूं
मैं उन विरूपताओं की लपटों के बीच
प्रहलाद की तरह सिर उठाते हुए सौन्दर्य को भी देखता हूं
और उस संगति को भी
जो इन विसंगतियों की काई फाड़कर झांक जाती है।
मैं अपने चारों और फैली हुई संक्रान्ति से नहीं
उसके बीच से अपने नक्श उभारती हुई
क्रान्ति से प्रतिश्रुत हूं !
अस्तित्व की बेहूदगियों के रेगिस्तान का नहीं
उसके नीचे बहती हुई
सार्थकता की उस अन्तःसलिला का कवि हूं
जो पाताल-तोड़ कुएं के रूप में फूट पड़ना चाहती है!
मैं उसकी मुक्ति के लिए संकल्पित हूं।

●●●

ममता

पहली बार मैंने तुम्हें पाया था
आनन्द के आंचल में मुस्कुराते हुए
और मैं न्यौछावर हो गया था
किस तरह मेरे सीने से आकर
लिपट जाती थीं तुम !
पर तुम्हारी तुतली जबान
पूरी तरह खुलने से पहले ही बन्द हो गयी
हमेशा के लिए
और मेरे रैन बसेरे के कच्चे आंगन में
फड़फड़ाते रहे कई दिन तक
तुम्हारी किलकारियों के केंचुल।

दूसरी बार मैंने बोया तुम्हें एक अनिच्छुक जमीन में
सात साल की जुताई और सिंचाई के बाद
अपना जला हुआ खून देकर
पाला तुम्हें आठ साल तक।
नन्हीं मुन्नी ठंडी हवा से
तुम चौथी क्लास में पढ़ने वाली मेरी पहिचान बन गयी
तभी अचानक लील लिया तुम्हें
उसी कृतघ्न कंकरीली जमीन ने
और मुझे सचमुच सर्वहारा बना दिया।

लेकिन मैंने फिर हिम्मत बटोरी है
मैं तुम्हें फिर आकार दूंगा, मेरी ममता
फिर बोऊंगा तुम्हें
तुम्हारे बीज के लिए बेताब
लम्बी प्रतीक्षा से थकी-हारी
एक स्निग्ध सजल क्यारी में।

फटी-झुलसी छाल वाली नंगी बांहें फैलाए
गुमसुम खड़े ठूंठ पर

सावन के आशीर्वाद सी उतरने वाली
नन्हीं मुन्नी हरियाली !
मैं तुम्हारे लिए कोई अच्छा-सा नाम खोज रहा हूं
सीमा, नसीम, अस्मिता के बाद तुम्हारा अगला नाम !

दो बार तुम मुझे धोखा दे चुकी हो
ईश्वर के लिए तीसरी बार न देना !

●●●

अभी आदमी

बहुत दूर मंज़िल है, लम्बा सफ़र है
अपने ही अस्त्रों से मरने का डर है
अभी से न खुश हो मनुज की प्रगति पर
अभी आदमी बहुत जानवर है !

●●●

विपरीत चिन्तन

मैं कई अजीबोगरीब मूर्खतापूर्ण काम एक साथ करना चाहता हूँ
मैं जीते-जी अपनी कब्र खोदना चाहता हूँ
बीस साल मैंने जन सामान्य को साम्यवादी बनाने की कोशिश की
अगले बीस साल मैं
साम्यवादियों को जनवादी बनाने की कोशिश करना चाहता हूँ।
मैं सोवियत संघ में गाँधी को जन्म देना चाहता हूँ
और हिन्दुस्तान में लेनिन को
क्रान्ति के साठ साल बाद भी वहां का आम आदमी निर्भय नहीं है
गाँधी के बिना यह काम कौन करेगा?
और आज़ादी के तीस साल बाद भी
यहाँ के दो तिहाई लोग भूखे सोते हैं
क्या लेनिन के अलावा भी इसका कोई इलाज है?
मैं कास्त्रो को अमेरिका का राष्ट्रपति चुनना चाहता हूँ
और कार्टर को क्यूबा का
मैं सब कुछ उलट-पलट देना चाहता हूँ
मैं अन्तरीपों को खाड़ियों में
और खाड़ियों को अन्तरीपों में बदल देना चाहता हूँ
मैं पहाड़ों को घाटियों में रख कर उन्हें समतल कर देना चाहता हूँ
मैं तीसरी दुनिया के रेगिस्तानों की प्यास
दोनों दुनियाओं की नदियों के पानी से बुझा देना चाहता हूँ
मैं तमाम उल्टे-सीधे काम एक साथ करना चाहता हूँ
मैं पाकिस्तान को हिन्दू राष्ट्र
और नेपाल को इस्लामी गणराज्य घोषित करना चाहता हूँ
अफ्रीका में गोरी सरकारें तो हैं
अब मैं योरप में काली सरकारों की स्थापना करना चाहता हूँ
मैं अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के सारे मुसलमान शिक्षकों का तबादला
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में कर देना चाहता हूँ
और बनारस के सारे हिन्दू शिक्षकों का अलीगढ़ में।
मैं मास्को में लिबर्टी स्टैच्यू लगाना चाहता हूँ
और न्यूयार्क में लाल सितारा।
मैं ब्रेज्नेव को स्पेनिश कम्यूनिस्ट पार्टी का महासचिव बनाना चाहता हूँ

ताकि केरिल्लो रूस में उनकी जगह ले सकें।
मैं चेकोस्लोवाकिया स्थित सोवियत राजदूत को
सोवियत संघ का राष्ट्रपति बनाने के लिए
अफगान सेनाओं को मास्को में उतार देना चाहता हूँ।
मैं चाहता हूँ कि कोई देश अपने घरेलू मामलों में खुद दखल न दे
उसे सिर्फ दूसरे देशों के घरेलू मामलों में
दखल देने का अधिकार हो !
यानी पूरी दुनिया एक परिवार हो
उसकी एक चुनी हुई संसद हो, संघीय सरकार हो
सब राष्ट्रीय सरकारें प्रान्तीय सरकारों में बदल दी जाएँ
जिनके पास न सेनाएँ हों न हथियार हों
एक ऐसी दुनिया बने, जिसमें
न तो कोई भूखा हो, न बेरोजगार हो
फिर भी हर व्यक्ति को अभिव्यक्ति का
आलोचना का, आन्दोलन का अधिकार हो
अपने जीवन पर, मरण पर
अपनी यति-गति-नियति पर पूरा अख्तियार हो
हर गाँव, कस्बे, नगर की
अपनी एक चुनी हुई स्वायत्त सरकार हो
लेकिन गाँव से लेकर विश्व तक की सभी सरकारों के पास
कम से कम अधिकार हों
ताकि वे धीर धीरे
बेजरूरत होकर
झर जाँय
टूटें
गिरें
और मर जाँय।

●●●

सरवारोव के निर्वासन पर

समाजवादी व्यवस्था एक माँ है
बूढ़ी और डरपोक
अपने बच्चों से बहुत प्यार करती है
उनके खाने-पीने और ओढ़ने-पहनने की पूरी व्यवस्था
भली भांति करती है
पर लगातार डरती है
कि कहीं पड़ोसी उसके बच्चों को बहका न दें
इसलिए उन्हें गली-मुहल्ले में घूमने नहीं देती
किसी पड़ोसी से बात नहीं करने देती
कोई बच्चा कभी मौका पाकर
किसी से थोड़ी देर बतिया ले
तो वह आग बबूला हो जाती है :
- जरूर उसने घर का कोई भेद उसे बता दिया होगा -
वह उसे पकड़ लाती है
लम्बी पूछ-ताछ करती है
और डपट कर घर की किसी अँधेरी कोठरी में बंद कर देती है।
वह यह नहीं सोचती
कि बच्चे अब जवान हो गये हैं
उन्हें इस तरह घर की चारदीवारी में बंद रखना
अब मुश्किल है।
वे उसके उपदेश सुनते हैं
और मुँह बिचका देते हैं
कभी-कभी तो कोई
टके-सा जवाब भी दे देता है
और वह बेहद चिढ़-चिढ़ी हो जाती है।

जरूर उसके लालन-पालन के ढंग में ही कोई खोट है।

उसे जानना चाहिए
कि जवान लड़के-लड़कियों को
यों छोटे बच्चों की तरह बचा-बचा कर रखने की कोशिश
खुद कितनी बचकानी है।

अलस चिन्तन

तुम थोड़े दिन यहां रह क्या गयी हो
मेरी आदत ही बिगाड़ गयी हो
जो थोड़ी बहुत कर्मण्यता थी मुझमें
वह भी झाड़ गयी हो
देखो ना ! मन नहीं लग रहा है बड़ी देर से
लगातार झड़ी लगी हुई है सबेर से
पर उठ कर रेडियो तक लगाने का मन नहीं है
कहने से लगा दे, आसपास ऐसा कोई जन नहीं है
इच्छा होती है, तुम आओ और लगा दो
बड़ी ठंडक है, पास बैठो, भगा दो !
यह बरसात है कि रुक ही नहीं रही है
तुम्हारे वहाँ भी बरस रहा है, या नहीं है ?
इच्छा होती है कोई हो जो गरम-गरम चाय पिलाए
दूध पड़ा है, उठ कर बना लूं ? भाड़ में जाए !
खुद बनानी पड़े तो फिर मज़ा ही क्या है ?
हां, बना सकता हूं अगर कोई दूसरा चाहे
चाय का तो वक्त ही है, अभी बजा ही क्या है ?
बनानी हो, तो किसी के लिए बनाएं
या फिर कोई बनाए, जब हम चाहें
मन का भी यह कैसा अजीब तर्क है
आखिर इस बनाने और उस बनाने में क्या फ़र्क है ?
थोड़ी देर पहले मैं आत्म-विश्लेषण कर रहा था
कि बहुत आलसी हो गया हूँ मैं,
इस निष्कर्ष से डर रहा था
देख तो सही, मैंने अपने आप से कहा
सारी रात तू ठंड से सिकुड़ता पड़ा रहा
बिछौने की चद्दर ही खींच कर ओढ़ ली
उठकर तुझसे कम्बल तक न लिया गया ?
लेकिन अब इस तर्क ने मुझे सहारा दे दिया है
आलस को नाम एक प्यारा दे दिया है
वासन्ती बयार का स्पर्श पा कर भी

फूल चलता नहीं है, सिर्फ़ खिलता है
यह आलस है या स्नेह-शिथिलता है ?
वाह ! जिसे आलस समझ रहा था
वह प्यार निकला !
जिसे अकर्मण्यता समझे था
वह कर्म का शृंगार निकला
मन है कि उपयोगिता नहीं चाहता
शृंगार चाहता है
कर्म को सीमित नहीं चाहता अपने तक
उसका विस्तार चाहता है
विस्तार तुम आओ तो मिले
वरना यह बिस्तर ही भला
कौन इस ठंडे मौसम में इस पर से हिले!
बिस्तर, जिस पर अब तक
तुम्हारे टूटे हुए इक्के-दुक्के केश बिछे हैं
स्मृति-शेष हैं जो अब
वे सारे उत्तप्त-श्वास आवेश बिछे हैं !

●●●

शिरीष का पेड़

कुछ भी तो नहीं है यहां वैसा
न रंग-बिरंगे बादल-चित्रों से सजा आसमान
न सरेशाम सड़क पर सरसराती साड़ियों के समूह
न नीम अंधेरे में से गुज़रती हुई
दुधमुँहे उभारों की भीनी-भीनी गंध
न लाल दरियां और घंटियां
न अंधेरी ठण्डक से जूझने के लिए
एक दूसरे के पास सिमट आने वाले मित्रों की
स्निग्ध निजी गरमाइश
पर सड़क के मोड़ पर आ जाता है अचानक
शिरीष का एक खिला हुआ पेड़
और सारा संदर्भ बदल देता है -
मन में एक अजीब सी बेकली भर जाता है
क्षण भर में बाँदा को वनस्थली कर जाता है!

शब्दों के पुल

तुम चाहती हो कि मैं सिर्फ
शब्दों के यान पर चढ़ कर पहुँचूँ तुम्हारे पास
और तुम्हारा स्पर्श अनुभव करूँ
सिर्फ कानों के पर्दों पर।

पर मैं ध्वनि को ही नहीं दृष्टि को भी अक्षम पाता हूँ
और अनूदित करना चाहता हूँ इन दोनों को
उस बुनियादी स्पर्श संवेदना में
जिसके बिना
मनुष्य और मनुष्य के बीच का यह आदिम जैविक सम्बन्ध
व्यक्त हो ही नहीं पाता ;
मैं अपने रक्त की गहराइयों में उफनती हुई आवाज को
अपनी अँगुलियों के छोरों से
तुम्हारी देह पर लिख देना चाहता हूँ।

तुम सिर्फ शब्दों के पुल बनाना चाहती हो
पर शब्द कितने असमर्थ होते हैं
जब दो देहधारियों की कुर्सियों के बीच
गज भर हवा हो।

हाँ, शब्द भी एक सेतु हैं
पर तभी
जब तुम मेरे वक्ष पर गाल टिकाये हुए लेटी होती हो
मेरे कन्धे पर सिर रक्खे हुए, मेरी शय्या पर मेरे साथ
तब मैं चीजों को उनके सही नामों से पुकार सकता हूँ
पर नहीं – कुछ ही चीज़ों को –
और तुम्हारे करवट बदलते ही वह कच्चा सेतु भी
एक किनारे से टूट कर
दूसरे किनारे से जुड़ा हुआ अधर में लटका रह जाता है
इसलिए शब्द...नहीं।

इतना पवित्र शब्द

तीन महीने तक मँडराता रहा लगातार
मेरे इस घिरे हुए मकान पर
काफी ऊंचाई से एक अदृश्य हैलीकॉप्टर
और रडारी आंखें बचाकर टपकाता रहा
राहत का सामान :
कभी कोई अपनाव भरी सी नजर
कभी कोई शर्माई हुई सी मुस्कान।
और फुंकारती रहीं
ईर्ष्या की एंटी-एयरक्राफ्ट गनें
दिशाबोध हीन
चारों ओर
ताकि कहीं कोई हो तो आ गिरे करता हुआ शोर।

और आज
जब थक गये हैं भौंक-भौंक कर
विमानभेदी तोपों के थूथन
एक तपती हुई दुपहर में
हैलीकॉप्टर उतर आया है
मेरे ऊबड़-खाबड़ आंगन में चुपचाप
और एक नीली आकाशी खुशबू से गमक उठा है
पूरा का पूरा मकान
पूरे तीन महीने एक उचित अवसर की तलाश में
अटकता रहा है मेरी जबान पर
अमृता प्रीतम का एक वाक्य
आज छू पाया है तुम्हारे कान :

''इतना पवित्र शब्द और होठ मेरे जूठे
कैसे कहूँ कि मैं
तुम्हें प्यार.....''

●●●

आम्रकुंजों में उभरता हुआ वियतनाम

तुमने एक बया को पिंजरे में डालकर
उसके घौंसले में
भोंक कर रख दिया है एक छुरा
बिल्कुल मेरे पड़ोस में -
नहीं, मेरे जिस्म पर
मेरी काँख के नीचे ऐन मेरी पसलियों पर
याहिया खान !
और मैं छटपटाता हूँ
रेडियो से लगाये हुए कान।

कैसी विडम्बनापूर्ण स्थिति है तुम्हारी - शेख मुजीबुर्रहमान !
कि तुम अपने लिए तैयार किये गये एक चेकोस्लोवाकिया को
वियतनाम में बदलने के लिए मजबूर हो गये।
एक निहत्थे राष्ट्र पर बरसाये जा रहे हैं बम
क्योंकि उसने अपने नक़्शे पर अपना नाम लिख दिया है
एक शस्यश्यामल खेत को रोंद रहे हैं भारी भरकम टैंक
एक महिला छात्रावास को घेर लिया है
बख्तरबंद गाड़ियों के गिरोह ने
और उसकी जाँघों में भोंक दी हैं अनगिनत संगीनें
और सब चुपचाप देख रहे हैं...

चुप हैं राष्ट्रीय स्वाधीनता और समानता के परंपरागत हिमायती
क्योंकि यह वियतनाम नहीं है
इसमें घुला हुआ थोड़ा सा चेकोस्लोवाकिया
उनके गले में अटक जाता है
और चुप हैं आज़ादी और जनतंत्र के सारे ठेकेदार
सर्वसम्मति के निकट पहुँचे हुए प्रचण्ड जनमत से चुनी हुई
एक जनवादी सरकार को
हथकड़ियों और गोलियों से शपथ दिलवाये जाते देख कर भी
क्योंकि यह चेकोस्लोवाकिया नहीं है
मुजीबनगर के आम्रकुंजो में उभरता हुआ वियतनाम का भूत
उन्हें भयभीत किये हुए है।
चुप है 'संयुक्त राष्ट्र संघ' जैसे गौरवपूर्ण नाम को चुराकर बैठा हुआ
बेशर्म स्वार्थियों का वह अन्तरराष्ट्रीय गिरोह

जिसके दरवाजे तब तक नहीं खुलते
जब तक कि कोई लात मार कर नहीं खोल देता।

लेकिन इस शताब्दी का सबसे बेहूदा और सबसे बड़ा मज़ाक
पेकिङ में हो रहा है
जहाँ वियतनाम और चेकोस्लोवाकिया
दोनों के लिए बढ़-चढ़कर बोलने वाला
और दुनिया के किसी भी कोने में हुई
किसी भी छोटी-मोटी खटपट को
जनता का मुक्ति-संग्राम घोषित कर
उसके समर्थन के लिए उतावला रहने वाला माओ त्से तुंग
सिर्फ़ चुप ही नहीं है
वह याहिमा के लिए छुरियाँ भी तेज कर रहा है।

तुम अपनी इस बेहयाई को
सिद्धान्तवादिता के कौन से गढ़हे में धोओगे, माओ !
ज़रा सोचो तो !

हाथ पर हाथ धरे देख रही है सारी दुनिया
टुकुर टुकुर
जैसे आदमी औरतें और बच्चे नहीं
मुर्गे काटे जा रहे हों
किसी भोज की तैयारी में।

सिर्फ़ बड़बड़ा रहा है सच्ची हमदर्दी के साथ
एक नपुंसक
और इन्तजार कर रहा है उस घड़ी का
जब उसे लाचार होकर कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।

बेचारा इतिहास
किस किस को माफ़ करेगा ?
और तुम, मुजीब !
तुम्हारा क्या होगा ?
क्या होगा तुम्हारा -
हो ची मिन्ह बनने के लिए मजबूर कर दिये गये दुबचेक !
क्या तुम भी लुमुम्बा की तरह चुपचाप
घोल दिये जाओगे तेज़ाब में ?

दर्द की गाँठ

रह रहकर उभर आने वाले
मेरे इस निबिड़ अकेलेपन का इलाज क्या है ?
किताबें, कविताएं, रिकार्ड, दोस्त
शराब, लड़कियां ?
या पापा की एक अबूझ उदासी को तोड़ने की कोशिश करने वाले
चंचल बच्चे ?
मेरे इस अमूर्त आत्मिक विषाद का इलाज क्या है ?

ये सब उतार लेते हैं कई बार उसकी ऊपरी पर्ते
'यह नहीं, वह' के सारे विकल्प इन्हीं पर्तो से जुड़े हैं
पर इन सब पर्तों के नीचे है
न जाने और कितनी पर्तों वाला
मेरे दर्द का वह नाभिक
        ध्रुवों पर जमी हुई शताब्दियों के नीचे
        दबे हुए एक सघन प्रस्तरीभूत हिमखंड की तरह
जिसे छू नहीं पाती है किताबें
कविताएं और संगीत
यहाँ तक कि प्रिया की संवेदनशील आँखें भी
नहीं अनुमान पाती हैं उसकी गहराई।

मेरे प्रियजनों, मेरी कविताओ !
मैं खोलकर रख देना चाहता हूँ इस दर्द एक-एक का रेशा
तुम्हारे सामने
और इससे मुक्त हो जाना चाहता हूँ
पर मैं क्या करूं
तुम्हारी सहानुभूति, तुम्हारी चोट, तुम्हारा प्यार
पहुँच ही नहीं पाता दर्द की इस गाँठ तक
कई बार उसके अस्तित्व तक से अनजान रहता है।

उफ़ कहां समर्पित करूँ ?
पारे की तरह बोझल दर्द से लबालब भरी इस मंजूषा को

जो बनी रहती है मेरे गहरे से गहरे प्यार के आरपार
मेरी ऊँची से ऊँची उड़ान की पहुँच के बाहर।

नहीं, मात्र सुखी-सम्पन्न गृहस्थ जीवन
सफल प्रेम
स्निग्ध मैत्री सम्बन्ध
और साहित्य-सृजन का सन्तोष इसका इलाज नहीं है।

●●●

अपनी खोयी हुई अस्मिता के लिए

'गुड्डन ! गुड्डन !!'
आज सुबह-सुबह जब मैं नहा रहा था
एक रिक्शे वाले ने आवाज दी और घंटी बजायी
मुझे लगा कि शायद तुम्हारे स्कूल का रिक्शा
डेढ़ महीने की तुम्हारी अनुपस्थिति के अभ्यास को भूलकर
आज तुम्हें सहसा पुकार उठा है
अभी उसे अपनी गलती महसूस होगी
और वह चला जाएगा
पर नहीं, फिर दरवाजा खटखटाने की आवाज़ आयी
और फिर 'गुड्डन ! गुड्डन !!', एक लड़की का स्वर गूंजा।
नहीं
मेरे भरते हुए घाव की सूखती हुई पर्त को उखाड़े बगैर
नहीं जायगी यह आवाज़ !
मुझे उठना ही होगा।

एक लड़की थी जो किसी निबंध की रूपरेखा बनवाने आयी थी
पर नाम लेकर तुम्हारा
पुकार रही थी मुझे।
पिछले तेरह महीनों से तुम मेरी पहचान बन गयी थी गुड्डन!
मेरी अस्मिता !!

खाना बनाने वाली सुशीला बाई
अपने आने की सूचना देती है अब भी
'गुड्डन बाबू!' की हाँक लगा कर।
तुम्हारे बिना लोग मुझे देखते हैं
और पूछते हैं : गुड्डन कहां है ?
गुड्डन! गुड्डन!! गुड्डन!!!
चारों ओर से पूछने वाली ये आवाज़े
मेरे कानों के पर्दों को खरोंचती हैं
मैं उन्हें कैसे बताऊँ
कि वह कृतध्न कोख

जिसमें जीवन के आठ साल बाद बोया था तुम्हारा
उसके लिए फिर भी अवाँछित बीज
और जिसने यह मालूम पड़ने पर
कि निरोध नहीं किया गया है इस बार
धोते हुए अपना द्वार
प्लास्टिक का वह नीला मग मार दिया था मेरे पैरों पर
इस षड़यंत्र के विरोध में
वही कोख ले भागी है तुम्हें चोरों की तरह चुरा कर
तुम पर अपना एकाधिकार स्थापित करने के लिए!

मैं कितना अकेला हो गया हूँ तुम्हारे बिना
मेरी नन्हीं-सी जान,
मेरी बिटिया !
तुम्हारी नन्हीं-नन्हीं बाँहें
मेरे गले के आसपास लिपट जाती हैं दिवास्वप्नों में
और 'हमारे सबसे प्यारे पापा' का स्वर गूंज उठता है कानों में
आंखों के सामने से हटता ही नहीं
तुम्हारा नीले ट्यूनिक वाला स्कूल से लौटकर
दबे पाँव सीढ़ियों पर चढ़ने वाला बिम्ब!
और वह औरत भुनाना चाहती है
तुम्हारे प्रति मेरे प्यार को
एक ब्लैंक चैक की तरह
वह चाहती है कि अगर मैं तुम्हें अपने पास रखना चाहता हूँ
तो उसे भी रखूँ
-उसे
जिसके एक एक हाव-भाव से घृणा करता है
मेरे रक्त का एक एक कण।

बहुत बड़ा नरक है बेटी अपने प्रियजनों का वियोग
मैं उसे भुगत रहा हूँ होठ चबाते हुए
पर उससे भी बड़ा नरक है अप्रिय का संयोग
जिसे आप नफ़रत करते हों
उसे अपनी शैया पर सुलाने की विवशता से बड़ा
क्या कोई नरक है इस संसार में

मैं नहीं जानता।

मैं तुम्हें भूलना चाहता हूँ, बेटी
पर मेरे मकान के एक एक कोने में बिखरे हुए हैं तुम्हारे स्मृति-चिन्ह
तुम्हारी किताबें, तुम्हारे कपड़े, तुम्हारे खिलौने!
चूड़ियों के टुकड़ों और राखियों के अवशेषों का वह ढेर
जो तुम गैलरी में बिखरा छोड़ गयी थी
मैने कागज की एक थैली में बन्द करके रख दिया है
तुम्हारी आन्टी ने तुम्हारी किताबें और कपड़े समेट कर
रख दिये हैं तुम्हारी अटैची में
कुछ तो कम हुआ है मेरी आत्मा के इर्द-गिर्द
तुम्हारे स्मृति-चिन्हों का घेराव
पर बैठक की दीवार पर बनाया हुआ
तुम्हारा विभिन्न रंगों के चौखानों का वह भित्ति-चित्र
जो सदाशय अंकल से चित्र बनाकर लगाने की योजना सुनते ही
तुमने बना दिया था
उसको क्या मैं मिटा सकता हूँ
है मुझमें इतनी हिम्मत ?

और बेडरूम में खाट के एकदम नजदीक चिपकी हुई
पत्रिकाओं से तुम्हारे काटे हुए चित्रों की कतरनें -
'चीकू' का इन्तजार किस बेकरारी से करती थी तुम
हर पखवारे के 'चम्पक' में
तुम्हारा चिपकाया हुआ नन्हें शैतान खरगोश चीकू का चित्र
मुझे देखता है और रुला देता है।

तुम्हें भूलने के लिए यह मकान ही छोड़ना होगा, बेटी!
यह मकान जिसके दरवाजों की कुंडियाँ
और बिजली के सारे स्विच
मैंने लगवाये थे नीचे-नीचे
ताकि तुम्हें खोलने-बन्द करने में कोई कठिनाई न हो
पर नहीं, यह मकान छोड़ने से भी काम नहीं चलेगा
कॉलेज में लड़के-लड़कियाँ पूछती हैं -
'गुड्डन कब आयेगी सर!'

और खासतौर से वह हादिया
जिससे तुम्हारी दोस्ती धारकुंडी यात्रा के दौरान हुई थी
और जिसने तुम्हारे रंगीन फोटुओं में से एक चुरा लिया था
उन्हें देखते-देखते।

गुप्ता जी की दूकान पर दोस्त पूछते हैं
गुड्डन को कहां छोड़ आये इस बार?
इसी सवाल के डर से
मैंने बोड़ेराम से दूध लेना ही छोड़ दिया है
केन नदी की ओर जाऊँ तो वह पूछेगी :
कहाँ है तुम्हारी बेटी? अकेले कैसे आ गये आज?

और टुनटुनियां पत्थर तक तो
चढ़ने की कल्पना भी नहीं कर सकता मैं, तुम्हारे बिना
नहीं,
यह मकान, यह कॉलेज, यह केन नदी, यह बाँदा शहर ही छोड़ना पड़ेगा मुझे
तुम्हें भूलने के लिए
पर फिर भी क्या तुम्हें भूल पाऊँगा?

●●●

प्रवासिनी बिटिया के प्रति

नहीं, अब मैं तुम्हें याद नहीं करता
तुमने खुद मुझसे दूर अपना ठिकाना चुन लिया है, बिटिया
तब व्यर्थ तुम्हें याद कर क्यों दुःखी होता रहूँ ?
सचमुच, अब मैं तुम्हें याद नहीं करता।
बस यह कि जिस दिन सुबह
हाफ फ्राइड अंडा नाश्ते में बनता है
एक एक ग्रास मेरे गले में अटकता है
और गले की रुकावट से आँखें थोड़ी छलछला जाती हैं
तुम तो शायद अब तक
हाफ फ्राइड अंडे का स्वाद भी भूल गयी होगी
नहीं, मैं भी अब तुम्हें याद नहीं करता।
सिर्फ यह कि
कल पंचायत उद्योग गया तो
अवस्थी पार्क के फाटक में
अपने आप मुड़ गया स्कूटर
सामने तुम्हारा शिशुमंदिर देख कर
अपनी गलती पर ध्यान गया
पर देख लो न मैं वहां रुका, न किसी से मिला
न उस अतीत पर आहें भरीं
जब तुम वहां झूला झूलती हुई मिलती थीं
और दौड़कर लिपट जाती थी
बस चुपचाप वापस लौट आया
और अपना काम करने लगा
तुम खुश रहो बेटी, मैं बिल्कुल तटस्थ हूँ
सारी परस्थता छोड़ कर अब स्वस्थ हूँ।

●●●

सपने में

भई गुड्डन, यह कौन सा तरीका हुआ
जब तुम्हें मेरे पास रहना नहीं है
तो मेरा पीछा छोड़ो
क्यों नाहक मुझे परेशान करती रहती हो
आना हो तो आओ पूरी तरह से
नहीं तो वहीं रहो मजे में
यह क्या बात हुई
कि दिन दहाड़े सबके सामने तो कहो
कि मम्मी के पास ही रहना है मुझे
और रातों में चुपचाप चली आओ यहां
और फिर यह तो भई हद है
जानबूझ कर दुःखी करने की बात है
कि भटकता रहूँ मैं सारी रात तुम्हारे साथ
स्मृतियां और संभावनाओं के बियाबानों में
और सवेरा होते-होते अदृश्य हो जाओ तुम
बिना कुछ कहे सुनेः
पापा को इस तरह नहीं सताते बेटे
अब बार-बार तुम्हें ढूंढने की
उनकी हिम्मत नहीं है।

●●●

गाँव

पूरे पन्द्रह बरस बाद
मैं अपने गांव जा रहा हूँ
गाँव, जो कब का छूट चुका था
निकटस्थ कस्बे के लिए
और वह कस्बा छूट गया नौकरी के लिए
और अच्छी नौकरी की तलाश में
मैं कितनी दूर चला गया
पूरे पन्द्रह बरस बाद
फिर से अपनी जड़ें छूने जा रहा हूं
पुष्ट और रक्ताभ।
लाछूडा के बस-स्टैंड पर उतरते हैं हम दोनों
मैं और पिताजी
और चल पड़ते हैं मारवां के खेड़े में
अपनी छह बीघा जमीन की ओर
तीन मील चलकर एक सूखा तालाब आता है
पन्द्रह बरस बाद
मैं पूछता हूं पिताजी से
रास्ते के एक पेड़की पत्तियां छूकर
खेजड़े और बबूल का अन्तर
एक सफेद चट्टान के पास पहुंच कर
पिताजी कहते हैं : यह है अपनी जमीन
न कुआं, न तालाब, न नहर
सिंचाई के किसी भी साधन से हीन
वर्षा की कृपा पर निर्भर छह बीघा जमीन।
और कहते कहते
उनकी आँखें छलछला जाती हैं
झुक कर मिट्टी को हाथ लगाते हैं :
यह धरती माता है
जो कभी कुमाता नहीं होती
चाहे जितना कुपुत्र हो जाय उसका बेटा।

पन्द्रह साल बाद मैं दौलतगढ़ के बस स्टैंड पर उतरता हूं
और शुरू हो जाता है
गांव के एक-एक आदमी से
मेरे परिचय का अटूट सिलसिला
'यह रणजीत है, मेरा सबसे बड़ा बेटा'
वे एक-एक व्यक्ति से उसकी
और उसके परिवार के एक-एक सदस्य की
कुशल-क्षेम पूछने के बाद कहते हैं
और वह कहता है : घणा दना में आया बापू
और मैं : हां पूरे पन्द्रह बरस बाद !

बस में बता रहे थे पिताजी
'मेरी उम्र के बस दो ही लोग बचे हैं गांव में
गजसिंग जी और नाथूसिंग जी
बाकी सब एक-एक कर चले गये'
गांव में घुसते ही हमें समाचार मिलता है
नाथूसिंग जी भी पिछले दिनों चल बसे
उनके बेटे भंवरसिंग से मिलने हम लोग जाते हैं
स्थूलकाया और बड़ी बड़ी खिचड़ी मूछें
यह मेरा सहपाठी था दूसरी या तीसरी कक्षा तक
मुझे बचपन की एक घटना याद आती है
छड़ी से पीटने वाले एक अध्यापक की छड़ी
दोपहर की छुट्टी में सभी लड़कों ने हाथ लगाकर
अर्थी की तरह उठायी
ताकि सबकी जिम्मेदारी रहे
और पास के कुंए में डाल दी
अध्यापक ने बड़ी पूछताछ की
पर किसी ने कुछ न बताया
फिर पता नहीं कैसे
भंवरसिंग उनके सामने था
उन्होंने डपट कर उससे कहा :
'अपने दाता की सौगन्ध खा कर कहो
कि तुम्हें कुछ नहीं पता'
सबके हृदय कांपे, अब वह बता देगा

अपने पिताजी की झूठी सौगन्ध वह नहीं खायेगा
पर उसने खा ली।
सबने शांति की सांस ली।
छुट्टी होने पर उससे पूछा :
तुमने दाता की सौगंध कैसे खा ली?
हंस कर बोला :
दाता की नहीं दांतां की सौगन्ध खाई थी मैंने
ज्यादा ही होगा तो दांत साले टूट जाएंगे
एक दिन तो टूटने ही हैं।
और हम लोग उसकी तुरत बुद्धि पर
खिलखिला कर हंस पड़े।
वही भंवरसिंग मेरे सामने बैठा था
अपने मजबूत दांतों के साथ
पिता की मृत्यु के बाद भी
बहुत कुछ वैसा ही जीवन्त।

'ये देवीलाल जी हैं, मेरे पुराने दोस्त
जब भी कभी आता हूं, खाना जरूर खिलाते हैं'
- पिताजी बताते हैं।
देवीलाल जी के तीन भाई और हैं
सिर्फ़ सबसे छोटे के एक लड़का है
दो क्वांरे ही बूढ़े हो गये
खुद देवीलाल जी की शादी हुई
पर कोई संतान नहीं
चार भाइयों पर एक ही लड़का
लाखों की सम्पत्ति है
सोचने लगता हूं कैसे वे दिन थे
लखपती महाजन कैसे क्वांरे रह गये
कैसे कटा होगा इतना लम्बा जीवन
बिना बीवी-बच्चों के।

जैन उपाश्रय के एक हिस्से में हम ठहरे हैं
बन्याग जी बापजी के रहने के कमरों में से एक में
आकर बैठ जाता है सोलानाथ जोगी

मैं अलसाया-सा लेटा हूं
वह पिताजी से बातें कर रहा है :
'बड़े बेटे की औरत किसी के साथ चली गयी
मूर्ख लड़का
दो हजार लेकर इस्टाम्प लिख दिया - छुट्टी !
आजकल कहीं दो हजार में लुगाई आती है ?'
'उन दो हजार का उसने क्या किया ?'
पूछते हैं पिताजी।
'मुझे दिया, मैंने उनमें छोटे की शादी कर दी'
कहता है सोलानाथ :
'लड़ता था मुझसे
तो मैंने कहा :
'तू तो भोग चुका दस साल
अब छोटे का भी तो इन्तजाम होना चाहिए।'
क्यों बा सा ठीक है कि नहीं ?'
और हामी भरते हैं बा सा
सोलानाथ कहता जाता है :
मेरे पास दो हजार की भेड़े हैं
कहता हूं उससे किसी मरे की लुगाई कबाड़ ले
भेड़ें मैं बेच दूंगा
पर वह चाहता है किसी जीवते की ले आये
और जीवते की दस से कम में मिलने की नहीं
कहां से लाऊँ मैं दस हजार इस अधबूढ़ के लिए
कहता है सोलानाथ।

शाम के खाने पर हमें धनसिंग ने बुलाया है
मेरे बचपन का दोस्त, लंगोटिया यार
वह और गजसिंग जी
मैं और पिताजी
चार जन हैं
वह पूछता है :
गिलास एक कि दो ?
इससे पहले कि मैं कुछ समझूं
पिताजी दृढ़ता से कहते हैं - एक

एक ही थाली में खाया था सुबह का खाना भी
बहादुरमल के घर पर
मैंने और पिताजी ने
बाद में बताया उन्होंने
दो गिलास का मतलब होता
बाप-बेटे में कुछ दूरी है।
दूसरी क्लास में बैठते थे
मैं और धनसिंग साथ-साथ
साथ-साथ टांगे जाते थे स्कूल की खूंटियों पर
जब कभी पकड़ी जाती थीं शैतानियां
उन्हीं दिनों चला था
प्रजामंडल का राष्ट्रीय आन्दोलन
मैंने जमींदारों के अत्याचारों के खिलाफ़
लिखी थी एक छोटी सी कविता
जिसमें 'अहिंसा की तलवार' उठाने का जिक्र था
इससे नाराज हो गये थे मुझसे
क्लास के सब राजपूत लड़के
और इसी चक्कर में मैंने एक बार
उठाकर दे मारा था अपने
सबसे पक्के दोस्त धनसिंग को जमीन पर
धनसिंग सामन्तवाद था मेरे बचपन का
और चांदमल था राष्ट्रीय आन्दोलन
दोनों मेरे दोस्त थे
चांदमल के साथ मैंने महात्मा बुद्ध की जीवनी पढ़कर
सत्य की खोज में
घर से भागने की योजना बनायी थी
पक्की और निश्चित।
पर जब महाप्रयाण की घड़ी आयी
चांदमल पीछे हट गया
'हम तो यहीं खांड-खोपरा खाएँगे' वह बोला
और इस तरह
सत्यान्वेषण का मेरा वह अभियान
बीच में ही रह गया।
बड़े ठंडेपन से मिला पर चांदमल

हालांकि वही एक दोस्त था
जिससे मैं पन्द्रह बरस पहले भी नहीं मिल सका था
यानी उससे मिला था मैं कोई पच्चीस बरस बाद।
उसके कानों में बड़े बड़े बाल उग आये थे
मकान उसने बढ़िया बनवा लिया था
और सौ तोले सोना दिया था अपनी बेटी के ब्याह में
पिताजी ने मुझे बताया
पर चांदमल से मिलने का मुझे कोई मज़ा नहीं आया
उसने दूकान पर ही चाय पिला दी
घर पर भी नहीं बुलाया।

कितने उत्फुल्ल हो उठे थे रघुवीरदान जी मास्टर साहब
मुझे अपने घर पहुंचा देखकर
मैंने उनके पैर छुए
और उन्होंने मुझे बांहों में भर लिया
पैंतीस-सैंतीस बरस पहले के वे दिन
मेरी आंखों में घूम गये
जब वे रामायण की चौपाईयों के अर्थ करने की चुनौती
फेंकते थे अपने छात्रों पर
और मैं उसे कई बार स्वीकार करता था
दूसरी कक्षा का छात्र
शब्दों और उनके अर्थों के साथ
वह मेरी पहली मुठभेड़ थी
और वे केम्पफायर मुझे अब भी याद हैं
जिनमें अपनी डायरी से राष्ट्रीय गीत सुनाते थे
रघुवीरदान जी
बाजार भर में हमारे साथ घूमे
सबको बताते रहे
बा सा के ये लड़के
प्रोफेसर हैं, इक्कीस सौ तनख्वाह है
पन्द्रह सौ पत्नी भी पाती है
बचपन से ही बड़े तेज़ थे।

शौच से लौटते हुए मिला धन्नादादा मोची

जिसकी दूकान पर मैं घंटों बैठा बैठा
देखता रहता था उसे जूते सिलते हुए
तले पर लेई लगाकर
चमड़े की छोटी छोटी कतरने जमाते हुए
और बड़ा होकर
एक बहुत ही नायाब किस्म का जूता
बनाने की कल्पना करता था मैं।
वह ज्यों का त्यों था
न रंग, न ढंग, न चाल
कुछ भी नहीं बदला था धन्ना का
हां चेहरे पर सफेदी छा गयी थी
और उसका बेटा
गांव के माध्यमिक स्कूल में मास्टर हो गया था।

वह और भंवरलाल पुरोहित दो ही स्थानीय शिक्षक थे
दौलतगढ़ के स्कूल में
दोनों मेरे आने की सूचना पाकर
दोपहर में मिलने आये बन्याग जी के उपासरे में
भंवरलाल बताता रहा
कि किस तरह वह बचपन में
मेरी और मेरे दोस्त नरपत की बेलदारी किया करता था
हम लोग शिकार जाते तो वह बंदूक उठाता
घोड़ों को पानी पिलाने जाते तो वह साथ हो लेता
शरीर का मजबूत था पर थोड़ा ठिगना
कह रहा था कि मैं तो मार्क्सवादी हूं
शोषकों की बढ़ोतरी न हो, इसका ध्यान रखता हूं
रेगरों का वह नोहरा
जिसे गांव के बनिये चार हजार में ले रहे थे
सबने एकठ करली, कोई आगे ही नहीं बढ़ रहा था
मैंने पाँच हजार में खरीद लिया।
पिताजी ने मुझे बाद में बताया
भंवरलाल की पत्नी बड़ी सुन्दर थी
लम्बी और सुडोल
हीरालाल जी नौलखा का मकान बनाने

तिलौली से एक कारीगर आया यहां
उसी से उसके संबंध हो गये
और पुरोहितों की बहू
चली गयी उसी कारीगर के साथ
अब उनके बच्चे हैं
और भंवरलाल बिचारे को
दूसरी शादी करनी पड़ी।

'ओक्खो ! कमला बाई, आप कब आयीं ?'
पिताजी की ऊंची आवाज गूंजी
मैंने उसकी तरफ देखा
झकाझक पीले कपड़ों में एक गोरा चेहरा
कुछ उम्र की, कुछ अनुभव की झाइयां
पचास तोला सोना मिला था, इसे भी शादी में
पिताजी ने बाद में बताया
'कैसी हो ससुराल में
कुछ बाल-बच्चे हैं कि नहीं ?' उन्होंने पूछा
पास खड़े उसके ममेरे भाई ने बताया -
'नहीं कुछ नहीं है।'
'अच्छा, भगवान की माया।
यह रणजीत है, मेरा सबसे बड़ा बेटा'
'हां मैं पहचान गयी'
अपनाव भरे स्वर में बोली कमलाबाई
बचपन में साथ साथ पढ़ती थी
खेलती थी
तलाई पर कपड़े धोने आयी थी एक दिन
बहुत बतियाती रही
नहाकर नेकर निचोड़ने लगा मैं
तो 'ला मैं धो देती हूं' कहकर
साबुन लगा धो दिया
बड़ा अच्छा लगा था
आज उसे देख एक फुरहरी-भरा दयाभाव
तन-मन पर छा गया
इतना सुन्दर सुडौल तन

और इस कदर सूनी कोख।

चरनसिंग जी की हवेली पर खाना है आज का
गांवभर में खोज कर लाये एक बकरा
रावलू के काकोशा दलेलसिंग जी के मझले बेटे
एक समय उनकी गज़ब की धाक थी
ठिकाने के बारह गांवों पर
बड़े दबंग ठाकुर थे
पर बेटों ने बड़ी जल्दी बदलते हुए ज़माने से
समायोजन कर लिया
बड़े किशनसिंग जी
आ गये राजनीति में, एम.एल.ए. हो गये
मझले चरनसिंग ने
सामन्ती शान की परवाह छोड़
ड्राइवर की नौकरी की
कई पापड़ बेले
अब बेटे सब लगे हैं किसी न किसी काम में
पिछले दिनों पोता हुआ
अमल-पताशा किया था उसका
तब पिताजी को बुलाया था
बड़ा यारबाज़ है
स्नेहिल जीव है
आधा गिलास गुड़ की कच्ची चढ़ाकर
रंग में आ गये बा सा
सुनाने लगे दौलतगढ़ में अपने
शुरू के दिनों की कहानियां :
'चौरानमें में इसका जन्म हुआ था कटार में
पच्च्यानमें में हमने दौलतगढ़ में दूकान कर ली
चालीस घर ठाकुरों के थे
इकतालीसवां मेरा
लेन में देन में, शादी में ब्याह में
होली-दीवाली पर
मेरे घर को ठाकुरों के घरों के साथ ही गिना जाता
यही नहीं, गांव के महाजन भी

अपने सौ परिवारों में जोड़ते थे
मेरा एक सौ एकवां परिवार
सब सामाजिक कामों में।'
बता रहे थे पिताजी
कि चरनसिंग दादोसा ने एक घूंट भर कर पूछा :
रणजीत की बीनणी कैसी है ?
'साक्षत देवी है, बड़े अच्छे भाग हैं मेरे'
सुरूर में थे बा सा
'एक दिन की बात बताऊं आपको बापू
रणजीत के जूतों पर पालिश की तो
मेरी भी कीचड़ भरी जूतियां चमका दीं
आप ही सोचिये
मैं पांचवीं फेल
और बहू एम.ए. पी-एच.डी.
ज़रा भी अभिमान नहीं
मेरी जूतियों पर पालिश कर दी।
कितना भाग्यवान् हूं मैं
आपही बतायें चरनसिंग जी !'
'क्या कहने, क्या कहने !'
झूम उठे चरनसिंग !

●●●

सिरफिरों का साथ

बरसों बाद आज फिर
मैंने जोड़ लिया है अपने आपको
सिरफिरों की एक दूसरी जमात से
बरसों बाद आज फिर
मुझे अहसास हुआ है
जीवन की सार्थकता का।

बरसों से छूटा था
सिरफिरों से मेरा सम्पर्क
क्योंकि उनकी एक जमात से मेरा स्वप्नभंग हो गया था
नहीं, उनमें से अधिकांश की ईमानदारी पर
नहीं हुआ था मुझे संदेह
असल में हुआ यह
कि उनकी आदर्श-निष्ठा को अपने स्वार्थ में इस्तेमाल करने वाले
उनके धूर्त नेताओं को पहचान लिया था मैंने
और देख लिया था
वैचारिक और आर्थिक पराश्रितता की
उन अदृश्य डोरियों को
जिनमें बंधे उनके नेता
हिन्दूकुश के पार अपने महल में विराजमान
एक चक्रवर्ती की चाकरी बजा रहे थे।
क्योंकि वे समझ नहीं रहे थे अपने दुरुपयोग को
मैं छिटक गया था उनसे।

आज मैंने फिर
सिरफिरों की एक नयी जमात से अपने को जोड़ लिया है
क्योंकि मैं जानता हूं
अपने मन की गहराइयों में कि
सिर-सीधे कर सकते हैं सिर्फ़
खेती, मजदूरी, दस्तकारी
नौकरी, व्यापार और शादी

बना सकते हैं सिर्फ़
योजनाएँ, मकान, बच्चे
सिरफिरे ही कर सकते हैं कोई नयी खोज
नया अविष्कार
नयी रचना
नयी क्रान्ति
रच सकते हैं कोई नयी कलाकृति
नया इतिहास
नया मनुष्य।

एक सिरफिरा
छत्तीसगढ़ के जंगलों में सुलगा रहा है इन्सानियत की आग
दूसरा
हरियाणा के शक्ति सामंतों से मुक्त करवा रहा है
अग्निवेश धारण कर
बरसों से बंधुवा बनाये गये दूर दूर के मजदूरों को
तीसरा इन्सानियत के चेहरे से पौंछ रहा है कोढ़ के निशान
एक युग से चुपचाप आनन्दवन में
कुछ सिरफिरे लड़के और लड़कियाँ
बोधगया के महन्त के चंगुल से छुड़ाने की कोशिश में
भूमिहीनों की ज़मीनें
कचहरियों के चक्कर लगा रहे हैं
और थानों में पीटे जा रहे हैं
मैं उनके साथ मार खाना चाहता हूं
और चिपक जाना चाहता हूं
उत्तराखंड की हरियाली को
सरकारी ठेकेदारों की कुल्हाड़ी से बचाने की कोशिश में
पेड़ों से चिपक जाने वाले लोगों के साथ !

●●●

यह आदमी

बड़ा ही कमअकल है यह आदमी
अपने ही शरीर के किसी अंग को
अपनी समस्याओं का कारण मानता है
अपशकुन समझ कर
अपने ही दाहिने हाथ से निकाल लेता है अपनी बांई आंख
और अपना ही एक कान काट कर
उसे मसाला लगा, फ्राई करके
पेश कर देता है अपनी स्वाद-लोलुप जीभ के सामने।
अपनी समस्याओं की जड़ मानकर
काट देना चाहता है
अपनी ही आबादी के एक हिस्से को
यातना शिविरों या जेलों में ठूंस देना चाहता है
या पागलखानों में बंद कर देना चाहता है।
हर समाज ने अपने किसी न किसी अंग को बना रक्खा है गलित
जिसे वह काट कर समय-समय पर चढ़ा सके
अपनी कठिनाइयों की वेदी पर
कहीं उसे नीग्रो कहकर
तो कहीं हरिजन
कहीं कुर्द तो कहीं वहाबी
कहीं कम्युनिस्ट छापामार
तो कहीं सी.आई.ए. के एजेन्ट
कहीं देशद्रोही
तो कहीं समाजवाद के शत्रु।

बड़ा आत्मभक्षी है यह आदमी
बड़ा मुर्दुमखोर
अपना ही मांस नोचता है
अपना ही बहता हुआ खून चाटता है
और खुश होता है
कि सेहत बन रही है

भेड़ियों से भी भयानक है यह आदमी
लकड़बग्घों से भी खूंख्वार
बिज्जुओं से भी वीभत्स
कोई भेड़िया किसी भेड़िये को नहीं खाता
कोई लकड़बग्घा नहीं चाटता किसी लकड़बग्घे का खून
कोई बिज्जू किसी बिज्जू की कब्र नहीं खोदता
पर यह आदमी
अपनी ही नस्ल की सामूहिक हत्या में लगा हुआ है
झण्डों और बैण्डबाजों के साथ।

लगा हुआ है तो हज़ारों बरसों से
पर अब मामला खतरे के निशान से काफ़ी ऊपर पहुंच चुका है
अपनी बीसों अंगुलियों में उगा लिये हैं इसने
जहरीले बघनखे
पहले की तरह अब यह संभव नहीं है
कि उसका एक हाथ नोच ले दूसरे हाथ को बघनखे से
और फिर भी जिन्दा बचा रहे यह आदमी।

●●●

क्रान्ति : एक भारी उद्योग

क्रान्ति एक भारी उद्योग है
विशाल निर्माण का भव्य अभियान
इसमें हज़ारों वैगन सीमेण्ट चाहिए
और लाखों टन लोहा
भारी मशीनें
और विदेशी नो-हाउ।
हिन्दुकुश के पार है हैड क्वार्टर
इसके एकाधिकारी मालिकों का
दुनिया के कोने-कोने में वे
क्रान्ति का निर्माण कार्य करवाते हैं
स्थानीय ठेकेदारों से
टेण्डर आमंत्रित करके
क्रान्ति के नक्शे पास करते हैं खुद मालिक
सामग्री की गुणवत्ता का परिक्षण करते हैं
इंजीनियरों की विशेषज्ञता का और ठेकेदारों की निष्ठा का
उनकी मदद के लिए अपने विशेषज्ञ भेजते हैं, समय-समय पर
और जो ठेकेदार उनके मनोनुकूल काम नहीं करवा पाता
उसे बदल देते हैं, बिना देर लगाए
ठेकेदार
इस भारी निर्माण के लिए
काम पर लगाता है
सस्ते स्थानीय मजदूर
मजदूरी और बोनस
ग्रेचुइटी और पी.एफ.
मरणोपरान्त पारिवारिक पेंशन
सब देता है।
भरती के लिए
आसपास की बस्तियों में भेजता है अपने प्रतिनिधि
जो आन्दोलन और प्रचार करते हैं
मजदूरों से कहा जाता है :
खुद तुम्हारे लिए आवास निर्माण का

परोपकारी काम शुरू कर रहे हैं
साथी अमुक अमुक
पहुंचे हुए क्रांतिकारी हैं।
सहायता कर रहे हैं साथी विदेशी विशेषज्ञ
उन्हें भेज रहे हैं क्रान्ति की राजधानी से
महामहिम साथी जनरल सेक्रेट्री
अपने वैश्विक कर्तव्य-बोध से प्रेरित होकर
आइये
और आत्मोद्धार के इस पुनीत अभियान में शामिल हो जाइये
अपने सपनों का देश बनाइये
इन महान् ऐतिहासिक कार्य में अपना जीवन लगाइये
इसके लिए त्याग और बलिदान से उसे सार्थक बनाइये।
एकत्र हो जाते हैं न्यूनतम मजदूरी पर
ढेर के ढेर क्रांति के सैनिक
अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर
क्योंकि अदम्य है क्रान्ति का आह्वान
शताब्दियों से सोया हुआ रहता है
यह शब्द उनके रक्त की गहराइयों में
पर इस थका देने वाले भारी निर्माण के दौरान
कई बार इन आदर्शवादी सैनिकों का भी धैर्य छूट जाता है
और उन्हें यह आभास हो जाता है
कि जिन भव्य भवनों का निर्माण हम
विदेशी विशेषज्ञों के निर्देशन में कर रहे हैं
वे हमारे रहने के कभी काम नहीं आ सकते
क्योंकि उनकी पूरी रचना
विदेश में स्थित क्रान्ति की राजधानी में बैठे हुए
महामहिम नेताओं की जरूरतों के अनुसार हो रही है
तब वे भड़क उठते हैं
काम छोड़ कर भाग जाना चाहते हैं
या ज्यादा हिस्सेदारी माँगते हैं निर्णय में
तब ठेकेदार को
मालिकों के परामर्श से
क्रान्तिकारी अनुशासन की स्थापना करनी पड़ती है
आखिर इस महान् ऐतिहासिक कार्य में लगे हुए श्रमिकों को

क्रान्ति के स्रष्टाओं को
यों ही छुट्टे तो नहीं छोड़ा जा सकता
कि वे अपनी धुन में चाहे जिधर निकल जांय
और दुश्मन के द्वारा इस्तेमाल किए जांय
ऐसी असाधारण स्थिति में
स्थानीय ठेकेदार
बुला लेते हैं हैडक्वार्टर से पुलिस और फ़ौज़
और अगर वे नू-नच करते हैं
तो हैडक्वार्टर खुद ही भेज देता है उनकी इच्छा के विरुद्ध
जो विद्रोह को दबाती है
क्रान्ति की अब तक की उपलब्धियों को बचाती है
और बचे हुए विद्रोहियों को यातना-शिविरों में संयोजित करके
फिर काम पर लगाती है।

बड़ा कठिन और उलझा हुआ होता है
क्रान्ति का निर्माण कार्य
उसमें वैगनों मांस लगता है
और टनों लहू।

●●●

पोलैण्ड के बारे में

1 : फटन

बीचों बीच से फट गया है
'सर्वहारा तानाशाही' का शानदार पोस्टर
और सर्वहारा हवा में मुट्ठियाँ लहरा-लहरा कर
अपने हिस्से की रोटी और गोश्त माँग रहे हैं
अपने ही नाम पर खड़ी की गयी तानाशाही से।

पूरी जनता एकजुट होकर
लड़ रही है
'जनता के जनतंत्र' से !
अपने जनतांत्रिक अधिकारों के लिए !!

यहाँ तक कि
एकाश्म 'कम्युनिस्ट पार्टी' भी पूरी तरह से टूट गयी है
ट और प के बीच से
और वार्शावा में आन्दोलित 'कम्युनिस्ट'
संघर्ष कर रहे हैं
मस्क्वा में गिरवी रक्खी हुई अपनी 'पार्टी' के साथ !

मार्क्सवाद का रचनात्मक विकास
जूझ रहा है मार्क्सवाद के 'वैज्ञानिक सिद्धांत' से।

2 : अधिकार

मजदूरों ने लम्बी हड़तालें कर
पार्टी से अलग
अपना स्वतंत्र मजदूर संघ बनाने का अधिकार हासिल कर लिया
छात्रों ने भी अपना स्वतंत्र छात्र संघ बना लिया है
किसानों के स्वतंत्र किसान संघ बनाने के अधिकार को
अभी कल ही मान्यता मिली है
अब तो बिचारी पोलिश कम्युनिस्ट पार्टी को भी
अपनी एक स्वतंत्र पार्टी बनाने का अधिकार
मिलना ही चाहिए।

3 : अपने आप से

तुम किसके साथ हो ?
मजदूरों के
या मालिकों के ?

क्या तब भी ?
जब मालिक अपने को मार्क्सवादी बताते हों
और मजदूर कैथोलिक ?

तुम किसके साथ हो ?
शोषकों के या शोषितों के ?

क्या तब भी ?
जब शोषक अपने को साम्यवादी कहते हों
और शोषितों को पूंजीवाद के एजेंट ?

तुम किसके साथ हो ?
दूसरों के देश में टैंक भेजने वालों के ?
या टैंको पर बम न फेंक कर
उनके चालकों से बहस करने वालों के ?
तुम किसके साथ हो ?

जबर काट

पाँच हज़ार बरस से जोत रहे थे वे
इसी जमीन को
और पाँच हज़ार बरस से काट रहे थे फ़सलें
दूसरों के लिए
आज पहली बार इकट्ठे हुए हैं
बोधगया के भूमिहीन किसान
अपनी ही जोती और बोई हुई ज़मीन पर से
अपने ही घर ले जाने के लिए काटने को फ़सल।
खेत को घेर रक्खा है
मठ के किराये के लठैतों ने
एक मजिस्ट्रेट
और पुलिस की एक टुकड़ी उनकी रक्षा के लिए तैनात है
सामन्ती भू संबंधों की रक्षा के लिए
तैनात है पूंजीवादी जनतंत्र का कानून और व्यवस्था
सत्ताधारी कांग्रेस और सत्ताकांक्षी जनता ही नहीं
क्रान्ति का झंडा लिए मस्क्वा-मुखी कम्युनिस्ट भी साथ है
बोधगया के हिन्दू मठाधीश के
एक तरफ़ है यथास्थिति की समर्थक सारी शक्तियाँ
सत्ता, संगठन, कानून, बन्दूक
और दूसरी तरफ़ है कुछ निहत्थे मज़दूर
और विश्वविद्यालय के कुछ आदर्शवादी विद्यार्थी
- युवा छात्र वाहिनी के सदस्य -
मजिस्ट्रेट ने चेतावनी दी
पुलिस ने हवाई फ़ायर किये
पर शताब्दियों से ठगा गया इन्क़लाब
उनकी ज़बान पर ही नहीं
उनकी मुट्ठियों की पकड़
और उनकी दरांतियों की धार पर भी उतर आया
सचमुच ज़िन्दाबाद होकर !

वाह रे संसार को सत्य और अहिंसा का संदेश देने वाले

मेरे देश !
आज़ादी के चौंतीस साल बाद
और समाजवादी गणराज्य घोषित होने के छह साल बाद भी
तेरे निज़ाम में
अपनी जोती हुई ज़मीन पर से
अपनी बोई हुई फ़सल काटना भी
इन्क़लाब है !

प्रतीक्षा

कई तरह के स्वाद देती है प्रतीक्षा
जब वह छोटी सी होती है
गदराये अधपके आम की तरह खटमीठी लगती है
पर थोड़ी अप्रत्याशित और लम्बी हो जाय
तो कसैली हो उठती है देशी आंवले की तरह
और जब निष्फल हो जाती है
तो कच्चे करेले सा कड़ुवा होता है उसका स्वाद
और ज्यादातर
दुश्चिन्ताओं के नीम पर भी चढ़ जाता है यह करेला।

इन्तज़ार के मज़े की चर्चा करने वाले शायरो !
क्या कभी निष्परिणाम प्रतीक्षा की है तुमने ?
कई कई दिन तक जब मन
हताशा और क्रोध के ज़हरीले धुंए से
धुंधुवाता रहता है लगातार
और फिर भी हर छोटी से छोटी खट्-खट्
खटाक् से उठा कर ले जाती है बाहर तक !
मैंने देखा है प्रतीक्षा को प्रतिहिंसा में बदलते हुए
बड़ी हत्यारिणी होती है प्रतीक्षा
आपको भीतर ही भीतर चीर कर रख देती है।

●●●

गोदो का इन्तज़ार

सब तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं ज़माने से
पर तुम नहीं आते गोदो !
हर बार धोखा दे जाते हो हमें
हम सोचते हैं कि तुम आये
तुम्हारे स्वागत में नारे लगाते हैं
और झंडे फहराते हैं
लिखते हैं नये संविधान
और गढ़ते हैं तुम्हारे स्मारक
कुछ दिन फूले नहीं समाते हैं
पर जल्द ही पहचान जाते हैं
कि तुमने अपनी जगह किसी ओर को भेज दिया था
या खुद ही कोई तुम्हारा मुखोश पहन कर
हमें दग़ा दे गया
सब तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं
पर तुम नहीं आते गोदो !

पहली बार तुम आये तो हमें लगा
मध्ययुगीन सामन्ती बर्बरता
और धर्मान्धता के अंधेरे में
निकला है मनुष्यता का सूरज
तुमने घोषणा की मानव मात्र की
आज़ादी, बराबरी और भाईचारे की
पर जल्दी ही स्थापित कर दिया
एक ऐसा आतंक-राज्य
कि आधुनिक युग के पहले वास्तविक जनतंत्र में
जो ज़रा भी असहमत हुआ अपने नेता से
गिलोटीन पर चढ़ा दिया गया
और अन्त हुआ इस जनतंत्र का
नेपोलियन की बर्बर फौज़ी तानाशाही में
जिसने पूरे योरोप को कुचल डाला।

हम फिर तुम्हारा इन्तज़ार करने लगे
पर तभी देखा कि तुम
एक बिल्कुल नयी दिशा से चले आ रहे हो
बिना विप्लव के नगाड़े बजाये
चुपचाप
लोहे की पटरियों पर धीरे-धीरे सरक रहे
भाप के एंजिन की शक्ल में
हमने तुम्हारा स्वागत किया
और देखते देखते तुमने
हमारे आसपास की पूरी दुनिया बदल दी।

हमने सोचा
अब आदमी बैलों की तरह नहीं जुतेगा खेतों में
खच्चरों की तरह नहीं ढोयेगा बोझा
चट्टानों को छेनियों से तोड़ते-तोड़ते
नहीं होंगे उसके हाथ लहूलुहान
जी तोड़ मेहनत से उसे मिलेगी मुक्ति
सचमुच इन्सानी जीवन जी पायेगा इन्सान
पर तुमने आकर मनुष्यों की दुनिया को
बना दिया एक लोहे का जंगल
जहाँ सीटियों के आदेश पर जागना होता है
और सीटियों के निर्देश पर सोना
जहाँ कुछ भी नहीं रह गया उसका अपना
न काम करना, न हँसना, न रोना
जहाँ फ़ैक्ट्री के ढांचे में ढल गया सब कुछ -
स्कूल और कार्यालय और अस्पताल
जहाँ हर जगह पैदा होने लगा
सिर्फ़ माल और माल और माल !
जहाँ धड़धड़ाती हुई आवाज़ें
या आगे बढ़ता हुआ पटरा
खुद करा ले जाता है काम
और पूरी तरह से एक हृदयहीन मशीन
बन जाता है इन्सान !
हमें लगा कि पहले से भी ज्यादा

नरक हो गयी है हमारी ज़िन्दगी
अमानुषिकता के नये-नये शिखर छू रही है
हमारे भीतर की दरिन्दगी !

हम फिर तुम्हारा इन्तज़ार करने लगे, गोदो !
और जूझने लगे तुम्हारे अवतरण के संघर्ष में
फिर बड़ी मेहनत और मशक्कत से तुम्हें बुलाया
कितने सिर कटवाये अपने जवांमर्द बेटों के
तुम्हारी अगवानी में
सोचा :
अब तक हमें सिर्फ़ धोखा हुआ था तुम्हारे आने का
इतिहास में पहली बार अब तुम सचमुच आओगे
-स्कूलों से बच्चों को
-अस्पतालों से रोगियों को
-कचहरियों से मुवक्किलों और वक़ीलों को
-जेलों से कैदियों को
-और फ़ौज़ों से फ़ौज़ियों को
छुट्टी दिलवाओगे !
और जब तुम आये
गड़गड़ाती हुई तोपों से दी तुम्हें सलामी
झंडे और बन्दूकें लहरा-लहरा कर किया तुम्हारा स्वागत
सोचा कि अब सब गरीब और अमीर हो जाएंगे बराबर
आदमी का आदमी पर जुल्म
खत्म हो जाएगा हमेशा हमेशा के लिए।

हाँ, हुए कुछ लोग कुछ दूसरे लोगों के बराबर
पर कुछ लोग कुछ ज्यादा ही बराबर हो गये
इतने कि वे फिर बनाने लगे
दूसरों को गरीब-बदनसीब
तुम्हारे ही नाम पर उखाड़ कर पूरी की पूरी आबादियों को
जलावतन करने लगे
और उन्होंने रच दी एक ऐसी दुनिया
जहाँ साँस लेना भी दूभर हो गया
किसी आज़ाद-ख़याल इन्सान का।

और अब हम फिर तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं, गोदो !
पर बड़े खट्टे दिल से
क्या तुम सचमुच कभी आओगे भी
या कभी नहीं आओगे ?
सिर्फ़ हमें बार बार किसी और को भेज कर बहकाओगे ?
बताओ तो गोदो !
या यह भी नहीं बताओगे ?

●●●

काम

कितना सर्वव्यापी है वह
जिधर भी देखो विराजमान है
किताबों की अल्मारी की तरफ देखता हूँ
तो धूल की पर्त में बैठा हुआ होता है वह
और कुछ किताबों में लगी हुई
काग़ज़ की चिन्दियों में से बुलाता रहता है मुझे
पलंग के नीचे पड़े टाइपराइटर में से झांकता है
और पलंग पर बिछी मैली चादर में से मुस्कुराता है
और बैठा रहता है चुपचाप मुंह बनाता हुआ
कोने में रक्खी हुई मच्छरदानी की
एक उधड़ी हुई सीवन में।
मेज़ पर बैठा है वह
चिट्ठियों के ढेर में
जांचे जाने वाले टंकित लेखों में
लिखी-अधलिखी कविताओं की फ़ाइल में
क़लम में, दवात में, गोंददानी में
यहाँ तक कि रद्दी की टोकरी में पड़ी हुई
फटी हुई चिट्ठियों में भी विद्यमान है वह !
छत के पंखे पर लटका हुआ है वह
पोंछी जा सकने वाली एक कलौंछ की तरह।
दसों दिशाओं, तीनों कालों में व्याप्त है वह
भूलोक से नक्षत्र लोक तक
घर में, शहर के बाहर, जहां भी मैं जाऊँ
वह मेरी प्रतीक्षा करता दिखाई देता है
सर्वत्र
सर्वदा।

नहीं, ब्रह्म नहीं है वह
न रब, न राम
वह तो है, आपका, हमारा, सबका
चिरपरिचित काम !

राष्ट्रवादी भारतीय

पहले उन्होंने नगालैंड में सेना भेजी
वह चुप रहा
क्योंकि वह नहीं जानता था कि नगालैंड कहाँ है
तब मिज़ोरम का नम्बर आया
फिर उन्होंने नक्सलवादियों का सफ़ाया शुरू किया
यह उसे ग़लत लगा
पर वह चुप रहा
क्योंकि वे माओ के एजेन्ट थे
और वह नक्सलवादी नहीं था
तब उन्होंने मणिपुर में लोगों को चुनचुन कर
मारना शुरू किया उग्रवादी कहकर
उसने अपने आप को समझाया
ज़रूर वे लोग मारे जाने लायक होंगे
लेकिन तब तक असम की तरुणाई
निकल पड़ी सड़कों पर
अपनी अस्मिता बचाने के लिए
'यह एक सही आन्दोलन है'
उसने अपने आप से कहा
'ऐन गाँधी जी की तरह सत्याग्रह कर रहे हैं ये लोग'
पर उन्हें वहां चुनाव ज़रूर करवाना था
अपनी सरकार बनवाने के लिए
सो उन्होंने सत्याग्रह करते असम को
हत्यागृह में बदल दिया
वह सोच रहा था कि विरोध करे
पर तब तक अमृतसर का स्वर्णमंदिर
आतंकवादियों का किला बन चुका था
भिण्डरांवाले को बरसों छुट्टा छोड़कर
उसकी राष्ट्रीय चेतना को इतना झिंझोड़ दिया गया
कि जब फ़ौज ने स्वर्णमंदिर फ़तह किया
तब उसने भी तालियां बजाई
क्योंकि वह सिक्ख नहीं था

उन्होंने कश्मीर में दलबदल करवा
भारी बहुमत से चुनी हुई सरकार गिरवा दी
यह ग़लत हुआ उसने सोचा
पर विरोध नहीं किया
क्योंकि वे फ़ारूख अब्दुल्ला को देशद्रोही कह रहे थे
और वह कश्मीरी नहीं था।

लगता है कि वह तबतक विरोध नहीं करेगा
जब तक वे बन्दूकें और गुंडे लेकर
उसके घर को नहीं घेर लेते
उसे देशद्रोही कहकर
पर तब
वह शायद अकेला ही विरोध करने को रह जाएगा
क्योंकि न तो वह नगा है न मिज़ो,
न मणिपुरी, न असमी
न सिक्ख, न कश्मीरी
कि कोई उसकी मदद को आये।

वे ही हैं उसका देश
और वह
उनके कटिप्रदेश का एक केश भर है
क्योंकि वह
सब प्रकार की क्षेत्रीय संकीर्णताओं से मुक्त
एक राष्ट्रवादी भारतीय है।

●●●

पानी

आज सुबह जल्दी उठा था
कि लिखना शुरू कर दूंगा
अपनी किताब का नया अध्याय
पर ज्योंही गेलेरी में आया
गली के नल को टपकते हुए पाया
इससे पहले कि पड़ोसी जागें
और लगा दें क्यू
अपना जरीकेन ले कर दौड़ा
और उसे नल पर लगाया
रस्सी गरदन में बांध कर लटकायी बाल्टी
और उसे भरने के लिए
बिटिया को जगाया
खींच खींच कर भर लिया घर का पूरा पानी
आज बड़ी देर पानी आया !
एक एक करके भर गये जब सभी बर्तन
तब मैं पूरी दो बाल्टी से नहाया
कई दिनों बाद नहाने का ऐसा मज़ा आया
दूर हुई तन-मन की दरिद्रता
रोम-रोम हर्षाया !

आह कितना सुखद लगता है
एक एक मटकी का ढक्कन उठा उठा कर यह देखना
कि वह पूरी भरी है
जैसे पूरी छप जाने के बाद
अपनी नयी किताब देखना
फिर फिर उलट कर।

कई दिनों बाद
मन खुशी से इतना बौराया
कि गाने-गाने को हुआ
पाया जी मैंने
राम रतन धन पाया !

संसार हत्या का षड़यंत्र

यह तो होना ही है एक दिन
निश्चित
अटल –
जबतक कि सब इसके खिलाफ़ उठ खड़े नहीं होते
समय रहते –
होकर रहेगी यह होनी
शुरूआत
चाहे किसी पगलाए हुए राष्ट्राध्यक्ष के बटन दबाने से हो
या कम्प्यूटर की ग़लती से
अपनी दुम में अलादीन का चिराग बाँधे
रात दिन चक्कर लगाते हुए किसी हवाई जहाज के
ऊबे हुए पाइलेट की बोरियत तोड़ने की कोशिश में से हो
या आसमान में उड़ती हंसों की कतार को
दुश्मन की मिसाइलें समझने की भय-जनित भूल में से
पर यह होना तय है एक दिन।
आखिर कब तक बचे रह सकते हैं हम?
अपनी उस निश्चित नियति से
दुनिया के एक-एक आदमी को
दस-दस बार मारने लायक
जौहरी ज़ख़ीरा जमा कर लेने के बाद भी?

क्या होगा उस दिन?
मेरा और तुम्हारा
मत सोचो।
क्या होगा उस दिन
भारत और पाकिस्तान का?
अमरीका और रूस का?
जनतंत्र और समाजवाद का?
मत पूछो।
क्योंकि इन सबका तो नाम-निशान भी न बचेगा।

एक साथ आ टकरायेंगे सैकड़ों सूर्य
पृथ्वी की पसलियों से
उसके रक्त-मांस-अस्थियों से
और सूर्य के ताप से भी ऊँचा उनका तारकीय ताप
भाप और भस्म बना देगा
अपने दायरे में आये हुए प्रत्येक पदार्थ को।
जीव-जन्तुओं, झुग्गी-झोंपड़ियों और अभ्रभेदी भवनों की भस्म
नदियों, तालाबों और झरनों की भाप से मिलकर
उठ खड़ी होगी सैकड़ों दैत्याकार कुकुरमुत्तों में
और एक एक आदमी के सिर को
एक एक टैंक के वजन से कुचल देने वाली
सैकड़ों स्फोट-लहरों से भुरकुस बने
और अग्नि-झंझाओं के झकोरों से झुलसे हुए
धरती के चेहरे पर
ज़हर छिड़कती रहेंगी कई दिनों तक
कुकुरमुत्ते-बादलों से बरसती हुई रेडियो-सक्रिय राख।
नहीं बचेगा कोई
इस सर्वनाश पर सोचने
या रोने वाला भी
मनुष्यों और जानवरों की जली-कुचली हुई
लाशों के ढेर तो होंगे चारों तरफ
पर नहीं बचेगा उन पर मंडराने वाला कोई गिद्ध
या कोई सियार
नहीं बचेगी कहीं भी
कोई गुर्राहट, कोई चीत्कार
कोई कुहू-कुहू, कोई क्रेंकार
नहीं बचेगा कहीं
कोई बरगद या देवदार
कोई आम, कोई नीम, कोई चीड़ या चिनार !

हाँ, जंगलों में फैल जाएगा फिर
ज़हरीली झाड़ियों का जनतंत्र
और खण्डहरों में स्थापित हो जाएगा
काक्रोचों का कम्युनिज्म !

नाम-हीन
इतिहास-हीन हो जाएगा यह पूरा ब्रह्माण्ड
और पृथ्वी
अपनी ओज़ोन की साड़ी लीर-लीर कर दिये जाने के बाद
अरक्षित, नंगी और बंजर
किसी औरत की अधजली लाश की तरह
क्षत-विक्षत
लटकी रहेगी आसमान में अनाम
यह सुजला
सुफला
वसुन्धरा !

यह तो होना ही है एक दिन
निश्चित
अटल
जब तक कि दुनिया के करोड़ों स्त्रियाँ पुरुष और बच्चे
घेर नहीं लेते
इसकी एक सौ साठ सरकारों के प्रधानमंत्रियों
राष्ट्रपतियों और तानाशाहों को
उनके सोलह सौ दफ़्तरशाहों और जनरलों को
और दिनरात हथियार बनाने में लगे कारखानों के
बत्तीस हजार मैनेजरों और मालिकों को
और बरखास्त नहीं कर देते उन सबको
सारे संसार की हत्या के षड़यंत्र में
शामिल होने के संगीन अपराध में।

●●●

अनुपस्थिति

आज सब्जी मंडी में गाजर दिखाई दी
टमाटरों के तो ढेर लग रहे है न जाने कब से
तुम लोग होते तो ज़रूर रस बनता
अकेले तो चाय तक बनाने को मन नहीं करता।

'मयूर' में लगी हुई है 'अर्धसत्य'
अर्से से हम लोगों ने कोई फ़िल्म नहीं देखी
पर अकेले थियेटर में जाकर फ़िल्म देखने की
कल्पना ही अजीब लगती है।

आज इतवार है कालेज नहीं जाना है
बच्चे होते तो मीट लाने का कार्यक्रम बनता
निक्कू और गुड्डन मांग मांग कर खाते
मुलायम हड्डियां और नलियां
उन्हें मनोयोग से खाते देख कर
खिलखिल जाती मेरे जी की कलियाँ।

कल पाजामे के पांवचे की तुरपन उधड़ गयी थी
हार कर उसे ठीक किया
टेढ़े-मेढ़े टांको से
तुम्हारी
बच्चों के कपड़ों में तुरपन करती हुई छवि
हटी ही नहीं बड़ी देर तक मेरी आंखो से।

रात बी.बी.सी. से रूपक आ रहा था
'देह कंचन'
कितना कितना किया मन
कि मेरे पास ही लेटा हुआ होता उस समय
तुम्हारी देह का कंचन
नेह की कस्तूरी से कुसुमित, उन्मन !

तुम होती
बच्चे होते
या पिताजी ही होते
तो उनसे पूछ तो सकता था
कि क्या बनवाया जाय आज खाने में
और तुम तो जानती ही हो
कि कितना नया स्वाद आ जाता है उसमें
सिर्फ़ किसी से पूछ कर बनवाने में।

●●●

बिना सोचे–समझे

बिना सोचे समझे बच्चे स्कूल चले जाते हैं
या दुकान पर या काम पर
बिना सोचे समझे वे खेलते रहते हैं
या पढ़ते रहते हैं
या अपने से छोटे बच्चों को
लादे-लादे फिरते हैं शाम भर
बिना सोचे समझे वे बड़े हो जाते हैं
बसों पर पत्थर फेंकते हैं
हाथों में बेशरम की कामड़ियां लेकर
खोमचे वालों का सामान लूटते हैं -
हड़ताल कर देते हैं।
बिना सोचे समझे
वे जवान हो जाते हैं
जो जगहें खाली होती हैं
उनके लिए दरख्वास्तें भेजते रहतें हैं
जो मिल जाती हैं उन्हें भर देते हैं
बिना सोचे समझे
मां-बाप या रिश्तेदारों की देखी हुई लड़कियों को
देख आते हैं और पसन्द कर लेते हैं
बिना सोचे समझे
मंदिरों-मस्जिदों में चले जाते हैं
या शराबखानों में
बिना सोचे समझे रेडियो सुनते हैं
टी. वी. देखते हैं
या खो जाते हैं जासूसी अफ़सानों में
बिना सोचे समझे
कि इनका क्या होगा
फिर बच्चे पैदा कर लेते हैं
और वे फिर बिना सोचे समझे बड़े होने लगते हैं
मतलब यह कि ज्यादातार लोग
बिना सोचे समझे अपनी पूरी ज़िन्दगी जी लेते हैं

जो मिल जाता है, खा लेते हैं
जो सामने आ जाता है, पी लेते हैं
बिना सोचे समझे कभी ताव में आ जाते हैं
और कभी डर भी जाते हैं
यहां तक कि बिना सोचे समझे ही
मर भी जाते हैं।

●●●

तदर्थ जीवन

कभी कभी लगता है
यह दुनिया
किसी ईश्वर द्वारा सोचसमझ कर बाकायदा गढ़ी हुई
कोई वास्तविक दुनिया नहीं
उसकी अनुपस्थिति में किसी प्रभारी अधिकारी द्वारा
तब तक काम चलाने के लिए
यों ही सी बना ली गयी एक तदर्थ दुनिया है।
अधिकतर लोग यहां जीवन नहीं
उसकी प्रतीक्षा में
एक काम चलाऊ
अन्तरिम-सा जीवन जी रहे हैं
किसी तदर्थ काम पर लगे हुए
कुछ तदर्थ मित्रों के साथ
एक तदर्थ राहत की चाय पी रहे हैं
किसी काम चलाऊ से मकान में
किसी काम चलाऊ पत्नी या पति के साथ
किसी तरह जिन्दगी की
चिर-चिर जाती चादर सी रहे हैं
और प्रतीक्षा कर रहे हैं
एक वास्तव में उनके अपने
आधिकारिक जीवन की।

●●●

कितना अच्छा है

कितना अच्छा है कि वक्त आने पर
सब लोग बूढ़े हो जाते हैं
और रिटायर भी
बिना किसी के कुछ किये।
अगर आदमी के हाथ में होता तो शायद
वह कभी बूढ़ा न होता
और न मरता
कितनी बुरी होती वह दुनिया
जिसमें हर ज़ालिम को
गोली मार कर ही मारना पड़ता।
कितना अच्छा है कि सब कुछ आदमी के हाथ में नहीं है
उसकी विवेकपूर्ण मक्कार व्यवस्था के समानान्तर
प्रकृति की एक विवेकातीत पर सदाशय व्यवस्था है
इसीलिए तो बड़े से बड़े आततायी की भी
भीतर ही भीतर हालत खस्ता है।

कितना अच्छा है
कि आदमी की फैलायी हुई सारी
गंदगियों और गलाज़तों को
पचा जाती है प्रकृति
और फिर से ताजा हवा देती है
चुपचाप उसकी सड़ी हुई सफलताओं के भीतर छिपी
सार्थकताओं के अण्डे सेती है।
कितना अच्छा है कि
हर आदमी अपने आप बूढ़ा हो जाता है
और मर जाता है
प्याला जब भर जाता है
तब पानी उसमें से निकलने लगता है
और बिखर जाता है।

●●●

पेड़

मैं घर में घुसता हूं तो देखता हूं कि
तुम मेरी छत पर लटके हुए हो
मेरे सिर को छाया देने वाली सिलों को थामे हुए
मैं बाहर जाता हूं
तुम उसे बन्द कर लेते हो दरवाजे पर खड़े होकर
किसी और को बिना मेरी अनुमति के घुसने नहीं देने के लिए
मैं आराम कर रहा होता हूं
तो तुम मेरे बिस्तर के नीचे चुपचाप प्रतीक्षा करते रहते हो
मैं बैठता हूं
तुम मुझे सहारा देते हो
अड़े रहते हो बीच में कि कहीं
पृथ्वी मुझे खींचकर अपने पेट से न लपेट ले
मैं खाना खाता हूं
तो तुम मेरी थाली अपने सिर पर थामे खड़े रहते हो
सांस रोक कर इस तरह
कि कहीं छलक न जाय
लबालब भरा हुआ मेरा पानी का गिलास
मैं आईने में अपना चेहरा देखता हूं
तो तुम उसकी ओट में खड़े होकर एकटक निहारते हो मुझे
तुम हर जगह मेरे साथ मौजूद रहते हो
नहाते हुए, कपड़े धोते हुए
पढ़ते हुए, लिखते हुए
यहां तक कि जब मैं
अपने सब खिड़की दरवाजे बन्द कर
कमरे की रोशनी बुझाने के लिए
बिजली का स्विच दबाता हूं
तो पाता हूं कि तुम्हीं
उसे मेरे लिए दीवार के सीने से लगाये हुए हो
और जब मैं बत्ती गुल कर घुस जाता हूं
अपनी प्रिया की गर्म बाहों में
तब भी

तब भी तुम उपस्थित रहते हो
मेरे बिस्तर के नीचे चुपचाप
अपनी उपस्थिति को झुठलाते हुए।
मैं हैरान हूं यह देखकर
कि दोस्त
किस कदर तुम मेरी जिन्दगी में रसे बसे हो।

पर इस सारी अन्तरंगता के बावजूद
मैं समझता रहा तुम्हें
अपने इस्तेमाल की एक वस्तु भर
जब तक कि चिपको आन्दोलन ने नहीं बताया मुझे
कि तुम मुझे मिट्टी देते हो :
        मेरी हड्डियाँ और मांस
        मेरी दुनिया, मेरा आकार !
तुम मुझे पानी देते हो :
        मेरा रक्त
        मेरे चेहरे की रौनक
        मेरी हस्ती की जड़ों तक पहुंचता हुआ
        तुम्हारा अजस्र प्यार !
तुम मुझे हवा देते हो :
        मेरी प्राण वायु
        मेरा आकाश
        मेरा पूरा जीवन्त संसार !

●●●

कभी कभी यह सोच कर

कभी कभी मैं दंग रह जाता हूं यह देख कर
कि प्रकृति ने इतना विशाल वैभव
मुझे बिनामोल कैसे दे दिया है अनायास
यह सूरज, यह चांद, यह सितारे
यह अनन्त आकाश
यह बेओरछोर पृथ्वी
ये पहाड़, ये नदियां, ये मैदान
ये लहराते हुए जंगल
ये सांय-सांय करते हुए रेगिस्तान
ये झरने, ये झीलें, ये ताल
ये पहाड़ों की कंदराओं से टपकती हुई
समन्दर तक पहुंचने वाली
पानी की अजस्र परंपरा
यह सुजला, सुफला, हरी भरी वसुन्धरा
ये चहचहाती हुई चिड़ियां, यह झींगुर की झनकार
यह जीव-जन्तुओं, रंगों, ध्वनियों का धड़कता हुआ संसार
ये मिट्टी के घरौंदो से लेकर
अट्टालिकाओं तक में रहने वाले
सभ्य-असभ्य, भले-बुरे इन्सान
ये काले, पीले, गोरे
ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान
हर एक की अपनी अपनी आभा
हर एक का अपना अपना सौन्दर्य
यह भाषा-भूषा-भोजन का वैशिष्ट्य
यह विविधतापूर्ण संस्कृतियों का ऐश्वर्य
और सबके दिल के तारों में थिरकती हुई एक ही तान
पता नहीं कब किस की किस अदा पर
मन हो जाए कुरबान !
कभी कभी यह सोच कर
मैं रह जाता हूं हैरान !

कौन सी क़ीमत अदा की थी मैंने
इतनी हसीन दुनिया की
कौन सा त्याग, कौन सी तपस्या की थी मैंने
कि मुझे मिला यह संसार
और उसमें तुम, मेरी प्राण !
जो है इस संसार का मेरे लिए
नितान्त निजी अवदान
क्या दिया था मैंने किसी को
कि मुझको मिला
तुम्हारा यह परम काम्य तन और मन
जैसे ओस की बूंद पर लरजती हुई धूप
जैसे बादल के जिस्म पर साँझ की किरन।
क्यों ?
क्यों गढ़ा था तुम्हारी माता ने अपनी कोख में
मेरी आत्मा का यह ऐश्वर्य
मेरी एषणाओं का यह प्रतिमान।
किसके लिए ?
किसके लिए पाला और पोसा
हाथरस की गालियों और वनस्थली के कुंजों ने
यह रूप-रंग-गुण का गुलदस्ता
यह पुष्पोद्यान
केवल मुझको ही
मुझको ही कैसे मिल गयी ?
संसृति की यह सबसे स्नेहिल, सबसे मधुर मुस्कान
कभी कभी यह सोच कर मैं रह जाता हूं हैरान !

कैसे बिना कुछ भी चुकाये
मिल गये मुझे
दो प्यारे-प्यारे बच्चे
कुम्हार की चाक से उतरे हुए
माटी के दो दिवले
मुलायम, सौंधे, कच्चे
जैसे बारिश में नहाई हुई बेला की दो कलियां
जैसे सूर्योदय में सुवासित शिरीष के दो फूल

अपनी स्नेह-डोर के दो छोर
अपनी ऊबड़-खाबड़ अस्मिता के दो कूल
एक मासूम सी देवदूती
एक नन्हा तूफ़ान !
कभी कभी यह सोच कर
मैं रह जाता हूं हैरान !

●●●

स्त्रीलिंग संज्ञा के लिए

मैं हूं उत्कोघड़ प्रेमी
मुझे प्यारी है नारी
और नारी होने के कारण ही
यह दुनिया सारी !
प्रेमी हूं
इसीलिए हूं साहसी
ख़तरा मोल लेने की रखता हूं क्षमता
मेरी सबसे उत्कट कामना है
दो स्त्रियों को एक साथ पाना
एक स्वतंत्रता
और दूसरी समता।

मैं चाहे लड़ूं
व्यक्ति की अभिव्यक्ति के लिए
उसकी अस्मिता के लिए
या पीड़ित-दलित जनता के लिए
या आणविक सर्वनाश से
इस पृथ्वी की रक्षा के लिए
मेरी हर लड़ाई निकलती है आखिर
किसी न किसी स्त्रीलिंग संज्ञा के लिए।

●●●

जैसे

जैसे हिम शिखरों पर सूर्योदय की आभा
जैसे सरसों के खेत में बसन्त की बहार
जैसे तपते असाढ़ में
एकाएक छा जाने वाली बादलों की घटा
जैसे सान्ध्य दिगंचल पर इन्द्रधनुष की छटा
जैसे ताजमहल पर शरद पूनम की दमक
जैसे किसी तन्मय वादक के चेहरे पर
बजती हुई सारंगी की गमक
जैसे किसी गाड़िया लुहार के ललाट पर
धधकते हुए कोयलों और
बनती हुई कुल्हाड़ी का प्रकाश
और उसे ढालने वाली संगिनी के घन प्रहारों की घमक
जैसे किसी खिलंदड़े मस्त बच्चे के गालों पर
उछाले जाते हुए रंगीन गुब्बारे की चमक
जैसे पके हुए अनार के झांकते हुए दानों में ललाई
जैसे शाण पर चढ़े हुए चाकू के फाल में धार
जैसे अपने पहलौठे बेटे के लिए
पहला स्वैटर बुनने वाली तरुणी मां की पेशानी पर
एक बिनता-उधड़ता हुआ संसार
जैसे रेल के सफर में किसी यात्री के हाथ में
रोटी पर रक्खा हुआ अचार
वैसे ही
ठीक वैसे ही खिलता है और भला लगता है
तुम्हारे कपोलों के ऐश्वर्य पर मेरा प्यार !

●●●

पृथ्वी के लिए

माँ तो तुम उनकी भी हो
पर वे दुर्बुद्धि भस्मासुरी बेटे तुम्हारे
नही जानते
नहीं मानते इस रिश्ते को
वे तुम्हारा दूध पीने की जगह
तुम्हारे स्तन काट कर
उनका मुलायम मांस खा जाना चाहते हैं भूनकर
उनके लिए तुम्हारे भरे-पूरे पयोधर
दुम्बे की दुम है
जिसे हर काटन के बाद
दूसरे दिन फिर से उग आना चाहिए
उनके स्वादिष्ट मांस की आपूर्ति के लिए।
वे तुम्हारी खाल उधेड़ लेना चाहते हैं
हिरनी की छाल की तरह
अपने रोयेंदार कोटों, जूतों और पर्सों के लिए।
अपनी गरमागरम मोहरों से वे दाग़ रहे हैं लगातार
जगह-जगह से तुम्हारा जिस्म
तुम्हारी शिराओं के रक्त में घोल रहे हैं निरंतर
इन घावों से निकला हुआ रासायनिक अपद्रव्य
तुम्हारी आँखों, कानों, नथूनों में झोंक रहे हैं
तेजाबी धुंए के बादल।
वे काट-काट कर तुम्हारी हरी भरी रोमावली
तुम्हें बंजर रेगिस्तानों और दलदलों में बदल रहे हैं
तुम्हारे कटे हुए रोमों से
सजा रहे हैं अपने घरद्वार
फ़र्निश कर रहे हैं अपने अपार्टमेन्ट
वे बाँध रहे हैं जगह-जगह
तुम्हारी रक्तवाहिनी धमनियाँ
अपने भव्य भवनों को वातानुकूलित करने के लिए।
वे तुम्हारे लहराते हुए नीले केशों में
आग लगा देना चाहते हैं

उनमें स्टार-आयोजित करके।
तुम्हारी ओज़ोन की साड़ी फाड़कर
तुम्हें नंगा कर देना चाहते हैं द्रोपदी की तरह वे
झगड़ालू जुएबाज नशेड़ी नपुंसक
कौरव और पांडव मिलकर।
तुम्हारी कोख में कर रहे हैं वे परमाणु विस्फोट
वे गिरा देना चाहते हैं हमेशा के लिए
उसमें पलता हुआ अपना ही भविष्य।
वे पुलिस के डण्डे की तरह घुसाकर
कई-कई किलोमीटर लम्बे बरमें
तुम्हारी देह की दरारों में
तुम्हारे भीतरी लावे की गर्मी से सेकना चाहते हैं
अपने क्षुद्र स्वार्थों के शरीर
गर्माना चाहते हैं अपने गर्हित गणिकागार
और तुम
असह्य यंत्रणा से काँप-काँप उठती हो।
वे तुम्हारे गले में जंजीर डाल
तुम्हें नचाना चाहते हैं एक बँदरिया की तरह।

मैं तुम्हें बचाना चाहता हूँ माँ
अपने ही इन आततायी भाइयों के अत्याचारों से
तुम्हें दुबका लेना चाहता हूं अपनी गोद में
अपनी प्यारी बिटिया की तरह
तुम्हें छुपा लेना चाहता हूं
अपने जरूरी कागज़ों में
एक पुराने प्रेमपत्र की तरह
तुम्हारी रक्षा करना चाहता हूं
बिल्ली की खूनी दाढ़ों से बच गयी
एक काँपती हुई कबूतरी की तरह।
मैं तुम्हें अपने लिए बचाना चाहता हूं पृथ्वी
अपने बच्चों के लिए
उनके बच्चों के लिए
सब बच्चों के भावी बच्चों के लिए
अपनी हथेली पर बैठे हुए

गौरैया के एक असहाय बच्चे की तरह !
मैं तुम्हें बचाना चाहता हूं पृथ्वी
जैसा एक गिलहरी बचाना चाहती है पेड़ को
जैसे एक मछली बचाना चाहती है
अपने कीचड़-भरे तालाब को
जैसे एक खरगोश बचाना चाहता है
उजड़ती हुई झाड़ियों को
जैसे एक पेंग्विन बचाना चाहती है
मीलों तक फैले हुए अपने बर्फ़ के सफ़ेद स्वर्ग को।
मैं तुम्हें फलते-फूलते हुए देखना चाहता हूं माँ
अपनी मेहनत की तरह
अपनी बगिया की तरह
अपने शहर की तरह
अपने देश की तरह।

●●●

आह ! सत्तर साल में ही

वृद्ध चेहरा, धंसी आंखें टिकी है अदृष्ट पर
औ पड़ी है थकी ऐनक 'केपिटल' के पृष्ठ पर
अनगिनत बलिदानियों के लहू से लिक्खी किताबे-इन्क़लाब
आह ! सत्तर साल में ही आ गयी परिशिष्ट पर।

●●●

मीरा

सुबह साढ़े तीन बजे उठकर
दाल पीसती है मुंगोड़ों के लिए
धाड़-धाड़ कपड़े धोती है
जब पति, देवर और बेटा उठते हैं
झाड़ू-पौंछा बर्तन-चौका
सब निबटा चुकी होती है मीरा
रात ग्यारह बजे तक
पति की खाने पर प्रतीक्षा करने वाली
और उसके बाद
बची-खुची बासी-ठंडी खाने वाली मीरा
अपने पति के लिए लड़ती है अपने पिता से
अपने भाइयों से
और फिर भी हर दूसरे चौथे दिन पिटती है
मुंह सूज जाता है
आंखें डूब जाती हैं सूजे हुए चेहरे में
नील पड़ जाते हैं हाथों-पांवों-पीठ पर
फिर भी खाना निबटा कर
सिलाई में जुट जाती है मीरा
एक-एक रुपये में आठ-आठ चड्डियां सीती है
बाज़ार के लिए
अपने बार-बार फ़ेल होने वाले बेटे की ट्यूशन के लिए
प्रेस करके रखती है कमीज़ें और पतलूनें
देवर की आवारागर्दी के लिए
झकाझक साफ़ कुर्ता-पाजामा चाहिए
चाट का ठेला लगाने वाले पति के लिए।

इधर पुलिस वाले ज्यादा तंग करने लगे हैं
तो बाज़ार में एक चबूतरा देखा गया है
उसकी 'पगड़ी' के लिए
उधार का इन्तजाम करने निकली है मीरा
बाबा बहुत ब्याज मांगता है

आप रुपये सैंकड़े पर दे दीजिए ना भाई साहब
इनका स्वभाव मत देखिये
ये नहीं भरेंगे तो मैं भरूंगी
दिन रात सिलाई करके;
आश्वसन देती है मीरा।
हर आये-गये को मुस्कुरा कर
आग्रह पूर्वक चाय पिलाती है मीरा
अपने हाथ से बनाये पापड़ सेंक कर ।

बहुत दर्दनाक लगती है
गंदे बर्तनों के ढेर के बीच राख-सने हाथों
और सूजे हुए चेहरे वाली
मुस्कुराती हुई मीरा
जैसे किसी कूड़े-भरे कीचड़-भरे सूखे तालाब में
खिला हो कोई गुलाबी कमल !

छोड़ क्यों नहीं देती इस बेहूदे आदमी को मीरा
जो अपने हाथ से अपना रूमाल भी नहीं धो सकता
खाना बनाना तो दूर।
दस दिन के लिए कहीं भाग जाओ मीरा
तो इसे नानी याद आ जाए
पता लग जाए कि मीरा के बिना
कितना दूभर है जीना
दिन रात खटती हो
और हर चौथे दिन पिटती हो।
घर छोड़ कहीं निकल क्यों नहीं जाती मीरा?
चार चार लोगों को कमा कर खिलाने वाली
क्या अपना पेट नहीं पाल सकती?

●●●

मेरे देश

हर क्षण मैं तुम्हें रौंदता हूँ कोंचता हूँ
लपेटता हूँ उधेड़ता हूँ
पहनता हूँ उतारता हूँ
खाता हूँ पीता हूं सूंघता हूं जीता हूँ
मेरे देश हर रोज़ मैं तुम्हें
चूमता हूँ चाटता हूँ
नोचता हूँ काटता हूँ
कोसता हूँ असीसता हूँ
हांडी में रांधता हूँ
सिलबट्टे पर पीसता हूँ।

मेरे देश गंगा के पानी में देर तक डुबकी मार
सिक्के तलाशने वाले निषाद बच्चों की
अकुलाई हुई साँस में तुम्हें देखता हूं मैं
और उस आक्षतिज फैले चमचमाते हुए पानी के विस्तार में भी
जो कन्याकुमारी के तीन अलग अलग रंगों के
समुद्रों के संगम में लहराता है
और उसमें भी
जो वैरीनाग में धरती की कोख से उमग कर आता है।

मेरे देश भेड़ों के रेवड़ में
बगुलों की क़तार में
ज़रा भी विरोध या आवाज़ किये बिना
जिबह हो जाने वाली मुर्गाबी के व्यवहार में
मुझे तुम दिखाई देते हो।
मेरी प्रिया के होठों में
मेरे बच्चों की आंखों में
मेरे मित्रों के स्नेह भरे हाथों में
मेरे विरोधियों की कुटिलताभरी घातों में
सूर्योदय की चमचमाती हुई बर्फ़ में
संध्या के पिघले हुए लोहे में

हरी घास की पत्ती पर ठहरी हुई
ओस की बूंद में
मीरा के पद में, कबीर के दोहे में
मेरे देश आसमान की ओर देखकर
नाचते हुए मोर के उल्लास में
चातक की पिउ-पिउ में
कोयल की कुहू-कुहू में
चक्की की घर्घर में
चरखी की चूँ-चूँ में
खिचड़ी की खदबद में
कुकर की विशल में
आल्हा की तान में
अल सुबह मस्जिद से आती हुई अज़ान में
मैं तुम्हें सुनता हूं।

मेरे देश
मेरे पाँवों में सने हुए कीचड़ में
मेरी पतलून पर लगे हुए कोलतार के दाग़ में
टपकेश्वर मन्दिर के रास्ते में गिरे हुए
नाग चम्पे के फूलों में
सर्दी से ठिठुरते हुए बच्चों के मैले कुचैले कपड़ों में
खलिहान में लगे कड़ाहे में बनते
गरम-गरम गुड़ की सौंधी खुशबू में
और चीनी मिल के आस-पास फैली हुई
अपद्रव्यों की बदबू में
खाना खाते हुए पिता की थाली से उठती
हींग के बघार की, और
पास ही रोटी का ग्रास चुभलाते हुए
टट्टी कर रहे शिशु की मिली जुली गंध में
मैं तुम्हें पहचान लेता हूं।

मेरे देश
ताजा भुनी हुई कच्ची मूंगफली के मुलायम दानों में
कमलगट्टे से निकले हरे मखानों में

मिस्सी तंदूरी रोटी और ताजा मट्ठे में
उड़द चने की दाल और उपलों की ढ़ँकी आँच में
सिक कर खिली हुई घी-डूबी बाटी मे
पुदीने और अमियाँ और प्याज की लंगरी-कुटी दड़फड़ी चटनी में
तिल्ली के तेल में डूबे मकई के मेवाड़ी ढोकले में
तंदूरी मुर्गे की टांग में
चने की दाल वाली कालीमिर्च-छुंकी खिली खिली
असमिया खिचड़ी में
आलू मटर गोभी की रसेदार सब्जी में
मसल कर खाई जाने वाली मकई की गरम गरम रोटी में
बत्तख के सिन्दूरी हाफ-फ्राइड अंडे में
सांभर में, रसम में, केरल की कढ़ी में
करेले और प्याज की मसालेदार तली हुई कतरनों में
ठीक परिपाक पर आयी हुई कांजी के बड़ों में
मिक्सर में पिसे हुए पके टमाटरों और
मलाई की दो मिनट में बनी सब्जी में
खुंभी में, टमाटर के सूप में
कच्चे दलदार नारियल की मुलायम मीठी गरी में
डाब के पानी में, सेब के ताजा रस में
बनारसी लंगड़े में, देहरादूनी लीची में
ललछौंहे गुलाबख़ास के स्वाद ख़ास में
चने के खेत में बैठकर हाथों से मसल-फूँक
आंवले के अचार के साथ खाये गये
भुने हुए होलों में
और न जाने कितनी-कितनी चीजों में
मेरे देश मैं तुम्हें पीता हूँ खाता हूँ
जीवित जागृत भरा पूरा पाता हूँ।

●●●

कितनी अच्छी होती

कितनी अच्छी होती यह दुनिया
अगर सोने-चांदी को लगने लगता घुन
नोटों की गड्डियां
पड़ी पड़ी फफ्फुंदिया जातीं
कई दिनों से रक्खी हुई डबल रोटी की तरह
काम में न आने वाली जमीन-जायदात
गंधाने लगती बासी मछली की तरह
और बैंक बैलेन्स
एक ही जगह रक्खे हुए टमाटरों की तरह
सड़ जाते वहीं के वहीं
कितनी अच्छी होती वह दुनिया
कोई जरूरत से ज्यादा इकठ्ठा न करता
सड़ने से अच्छा है कि दूसरे के काम आए
सोचता हर इन्सान
और सुखी हो जाता
अपना फालतू बोझ बाँट कर।

●●●

कुछ नहीं होता

नहीं होता
कुछ नहीं होता अभी भी
विचार-विमर्श से
बहस-मुबाहसे से
समझाने-बुझाने से
अनुनय-विनय से
औचित्य और न्याय के सारे तर्को से
कुछ नहीं होता
पांच हजार साल के सारे सांस्कृतिक विकास के बाद भी
जिसकी लाठी है, उसी की भैंस है।
गजब की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के बाद भी
आदमी का सबसे कारगर हथियार अभी भी
डंडा ही है।

कितनी बुरी बात है
कि चाँद पर पहुँच जाने के बाद भी आदमी
अभी डंडे से ऊपर नहीं उठ पाया है।

●●●

जलो !

उनसे कभी सहा नहीं गया है तुम्हारा ताप
भस्म हो जाते थे वे पुराणों में उसके सामने
और जल जाते हैं भीतर ही भीतर
अब भी उसे देख कर
वे तुम्हें ठंडा ही बनाये रखना चाहते हैं, नारी !
आइस्क्रीम या कुल्फी की तरह
ताकि तुम्हें खा सके इत्मीनान से
चम्मच-चम्मच करके
या चाट-चाट कर पिघलाते हुए चारों ओर से।
हुआ करे तुम्हारे आंचल में दूध
और आंखों में पानी
पर कोई नहीं देखना चाहता
तुम्हें दूध या पानी
कोई नहीं चाहता कि तुम उबल पड़ो
एक सीमा से अधिक तपाये जाने पर
दूध या पानी की तरह
और उफ़नकर जला दो तपाने वाले के हाथ
क्योंकि उनकी नज़र में
तुम्हारा धर्म जलाना नहीं जलना है।
जलो!
निरन्तर जलती रहो तुम
धीरे-धीरे चुकती जाती मोमबत्ती की तरह
या दहेज की झौंपड़ी में जिन्दा जलो
अपने ही पति या सास-ससुर के हाथों
बराबरी का अधिकार मांगने वाले
दलितों की तरह
या जलो खुद छिड़क कर अपने जिस्म पर
मिट्टी का तेल
इस तरह कुछ ज्यादा ही सरल हो जाता है
उनका यह हत्यारा खेल।

मुसलमान के बारे में

यहीं जन्मा है वह
इसी धरती पर
जैसे मैं और तुम
इसी देश का सपूत या कपूत है वह
मेरी और तुम्हारी ही तरह
आये होंगे उसके कुछ पुरखे
अरब से, तुर्किस्तान से
जैसे मेरे और तुम्हारे भी कुछ पुरखे आये थे
मध्य एशिया से, यूनान से
हाँ, आक्रमणकारी थे वे सब
तलवारें लेकर घोड़े दौड़ाते हुए आये थे
जीतने इस देश को
अपने साथ नहीं लाये थे अपने बीवी-बच्चे
आये, लूटा-मारा यहाँ के लोगों को
और काबिज हो गये यहाँ की धरती के साथ-साथ
धरती की बेटियों पर भी
बंध गये इसी शस्य-श्यामला के मोहपाश में
और घुलमिल गया
उन विदेशी आक्रमणकारियों का रक्त
हम सब के पूर्वजों के रक्त में
नहीं, कोई किसी से कम वहशी नहीं था
हमारे उन आक्रमणकारी पुरखों में से
चाहे वे द्रविड़ हों, आर्य अथवा मंगोल
या फिर शक, हूण, तातार, तुर्क या ईरानी
उन सबका मिलाजुला खून
आज मुझमें है, तुममें है, हम सबमें है
यहाँ तक कि
हजारों बरस पहले के महापुरुषों
राम और कृष्ण में भी
पहचाना जा सकता है वह
आर्य गौरांगता के वृक्ष पर खिले हुए

एक सांवले फूल की तरह।
पर इस सच्चाई से शर्मिन्दा होने की जरूरत नहीं है
न इसे झुठलाने की
क्योंकि इसी के माध्यम से रचा है इतिहास विधाता ने
इस मानव महासागर को
जिसे भारत या हिन्द कहा जाता है।
कोई नहीं है विदेशी
इस देश में पैदा होने वाला
चाहे कभी-कभार झांकता हो वह विदेशों की ओर
जैसे मैं और तुम भी झांकते रहे हैं लगातार
आदर्श की खोज में रूस या चीन की ओर
या ऐश्वर्य की खोज में योरोप और अमेरिका की ओर
अच्छी जीविका की तलाश में
विदेशों में जा बसने वालों तक को
जब हम नहीं मानते पराया
तो उसका बाहर की तरफ झांकना भर
क्यों बना देता है उसे
तुम्हारी नज़रों में गद्दार ?
यह दो रुखापन है -
"तुम्हारे पांव पांव
हमारे पांव चरन" है।
तुम्हारा यह भेदभाव
उसमें भी पैदा करता है अलगाव
उसी को परीक्षा की कसौटी पर
क्यों कसते रहते हो लगातार ?
क्यों जरूरी है उसके लिए हर कदम पर
अपने आपको देशभक्त प्रमाणित करना
क्या सिर्फ इसलिए कि
वह गिनती में तुमसे कम है ?

●●●

मैं मरूँगा सुखी

मैं मरूँगा सुखी
मैंने जीवन को भरपूर जिया है
भर भर कर पिया है प्याला
संघर्ष किया ऊर्ध्वबाहु होकर
जुल्म से ज़बर से
यह नहीं कि सफल ही रहा हूँ सदा उसमें
हारा भी हूँ
हुआ हूँ हताश भी अनेक बार
पर ग़म नहीं पाला उस हार का
टूटा नहीं हूँ कभी।

मैं मरूँगा सुखी
मुझे प्यार करती है
अब तक भी मेरी प्रिया
मान देते हैं मुझे
मेरे अपने बच्चे
मैं मरूँगा सुखी
मेरे मन में धधक नहीं रही है कोई ईर्ष्या की आग
न ही धुंधवा रही है कोई
लोभ की लकड़ी
न उसमें जाले ही बुनती है कोई
महत्वाकांक्षा की मकड़ी
केवल एक दिया जलता है आत्मसम्मान का
अपने मनुष्य होने के ध्यान का।

मैं मरूँगा सुखी
लुका-छिपा बंदकर
तिजोरियों में, कोठरियों में
मैंने नहीं रक्खा है जीवन का रसरंग
होली के रंगों की तरह
भर-भर पिचकारियों में, डोलचियों में

मारा है प्रियजनों के परिजनों के तन-मन पर
बाल्टी की बाल्टी उड़ेला है।

मैं मरूँगा सुखी
स्वप्न-ध्वंस, भ्रमभंग मेरे सब हो चुके
कभी के
दंश उनके सहकर निकल आया मैं
पचास से पहले ही
अब नहीं है कोई भ्रम
टूटकर जो तोड़े मुझे।

मैं मरूँगा सुखी
नहीं हूँ किसी ऐसे जन का सहारा मैं
बेसहारा हो जाए जो मेरे मर जाने के बाद
छोड़ जाऊंगा मैं सबके लिए कुछ न कुछ
सभी धन्यवाद देंगे
छुएंगी नहीं किसी बदकार की बद्दुआएं मुझे -
मैं मरूँगा सुखी।

मनुष्य के बारे में

जंगल का कानून है, लट्ठ भैंस का न्याय
अब भी कितना पाशविक, यह मानव-समुदाय।

एक तिहाई लोक को, नहीं पेट भर अन्न
व्यर्थ गर्व करता मनुज, मैं विवेक सम्पन्न।

कहने को संस्कृत हुई, मानव की सन्तान
वही दमन, शोषण मगर, कहाँ बनी इन्सान?

जोर जुल्म, छीना झपट, हत्या हाहाकार
दानवीय कितना अरे, यह मानव संसार।

आधी जनसंख्या अभी, भूखी, दलित, गुलाम
धिक् मानव की प्रगति है, धिक् इसका विज्ञान।

दो हजार पच्चीस में

अरे यह कौन सी दुनिया है भाई ?
पहचानी ही नहीं जाती।
उन बड़े-बड़े धुआं उगलते शोर-भरे कारखानों का क्या हुआ ?
क्या हुआ कनफोड़ जम्बोजेटों का
इजारेदार मल्टीनेशनल्स के विश्वव्यापी मकड़जाल का ?
धरती को कई-कई बार धवस्त कर सकने वाले
पारमाणविक अस्त्र-भण्डार का ?
कहां गये
देश देश की सीमाओं पर लगे हुए कँटीले तार ?
क्यों दिखाई नहीं दे रहे हैं
पासपोर्ट और वीसा देखने वाले हथियारबन्द चैकपोस्ट।
बाढ़ अकाल और भुखमरी से पीड़ित
काले कृशकाय बूढ़ों और बच्चों की कतारें कहाँ गयीं ?
कहाँ गये जिस्मफरोश औरतों और बच्चों के बाज़ार ?
कहाँ गये चम्बल के डकैत
चन्दन-चोरों के हत्यारे गिरोह
शहरों के गुंडे और बदमाश
गांवों के चौधरी, पटेल और ठाकुर
गलियों के चोर, उचक्के और गिरहकट
नशीली दवाओं के तस्कर
हथियारों के स्मगलर
और तमाम तमाम तरह के आतंकवादी
और उन्हें पकड़ने के नाम पर
रात के अंधेरे में बेकुसूरों के दरवाजे तोड़ती हुई
फ़ौज़ी टुकड़ियाँ ?
सलामी परेड में धरती को रौंदती हुई
देश-देश की दंभ-भरी मिसाइलों की कतारें कहाँ गयीं ?
कहाँ मुँह काला किया उस काले धन ने
जो मेरे लम्बी नींद सोने से पहले
सारे संसार पर एकछत्र शासन करता था ?

अरे वाह !
कैसे अभयारण्य के हिरनों की तरह कुलाँचे भर रहे हैं
देश-देश के मर्द औरतें और बच्चे
रमणीय-पर्यटन-स्थलों में कैसे बदल गये हैं
घर, कारखाने और कार्यालय
कहाँ विलुप्त हो गये वे सारे के सारे तानाशाह
जिनके मारे जीना दूभर था पच्चीस साल पहले ?
कहाँ गये रिश्वत खोर राष्ट्रपति
तस्कर तांत्रिको के पांव छूने वाले
हयाहीन, हवालाखोर प्रधानमंत्री
फौज और पुलिस...
जेलें और श्रम शिविर...

तो आख़िर वही हुआ ना ?
जो मैं सोचता था कि एक न एक दिन होगा जरूर
जल्दी हो या देर से
और ज्यादा देर भी नहीं लगी
मैं जानता था
अपनी सारी मूर्खताओं और धूर्तताओं के बावजूद
मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है
वह सचमुच एक जीने लायक दुनिया बनाएगा अपने लिए एक दिन
जहाँ कोई दीन हीन नहीं होगा
नहीं होगा कोई दलित-दमित
भाईचारे की डोर से बँधे हुए
एक परिवार की तरह हिल मिलकर रहेंगे
पूरी दुनिया के लोग
और आखिर उसने बना ही ली।
शुक्र है, शुक्र है
लाख लाख शुक्र है।

●●●

नये साल का संकल्प

मैं लड़ूंगा
लड़ता रहूंगा
इस बर्बर आततायी आमनवीय व्यवस्था से
इस तर्कहीन, न्यायहीन, निकम्मे निज़ाम से
लड़ता रहूंगा
जब तक कि मेरे हाथ पांव सलामत हैं
अपने जिस्म की आखिरी हरक़त तक
आखिरी सांस तक
लड़ूंगा अपनी जान हथेली पर रखकर
पर उसे उड़ने नहीं दूंगा
एक कायर क़बूतर की तरह
क्योंकि जान ही गँवा बैठा अगर मैं
तो लड़ूंगा कैसे ?

मैं जिऊंगा
इस आदमखोर व्यवस्था के विनाश तक
और लड़ता रहूंगा इसके खिलाफ़
एक जंगली सुअर की तरह
अपने दाँतों और खुरों से
और बाँध दिये जाने के बाद
अपनी चिंग्घाड़ों से
अन्तिम साँस तक, अन्तिम शब्द तक।

मैं लड़ूंगा
लड़ता रहूँगा
इस बर्बर आततायी अमानवीय व्यवस्था से
लेकिन बिना हथियार उठाये
क्योंकि अगर मैंने
झुंझला कर, धीरज खोकर, हारकर
पिस्तौल तक उठा ली
तो कितनी खुश होगी यह व्यवस्था

क्योंकि तब कितना सरल हो जाएगा इसके लिए
कोने-कोने में तैनात अपनी किसी भी कारबाइन से,
मशीनगन से मुझे भून डालना
एक आंतकवादी कह कर
नहीं,
मैं शहीदों के प्रति पूरे सम्मान के बावजूद
नहीं मरना चाहता एक शहीद की मौत
न अकेला
न अपने चन्द साथियों के साथ
क्योंकि मैं जानता हूँ
कि इस तरह की मौत मेरा मारा जाना
कितना सुकून देगा इस व्यवस्था को
और मेरा जीवित रहना
कैसे काँटे की तरह कचोटता रहेगा इसे।

मैं लडूंगा
लड़ता रहूंगा, पर
किसी सशस्त्र क्रान्ति की कोशिश में
अपनी जान लुटाने वाले जाँबाजों को सलाम भेजते हुए
मैं यह भी जान और मान गया हूँ
कि हथियारों के मैदान में इससे जीतना मुश्किल है
जीतना दूर
लड़ते रहना तक कठिन है
मुझे नहीं लगता
कि हथियारों से कभी परास्त होगी यह
बहुराष्ट्रीय निगमों की रखैल
सर्वनाशी नाभिकीय अस्त्रों से लैस
यह कोटिबाहु, कोटिचरण, कोटिशीश राक्षसी
उल्टे उससे हथियारों की लड़ाई
कर देगी हमारा भी राक्षसी रूपान्तरण !

इसलिए
बहुत धैर्य से लड़ना पड़ेगा इससे
बहुत जागरूकता, बहुत सतर्कता से

व्यापक संगठन और आन्दोलन से
कविता से, कहानी से, फिल्म, दूरदर्शन से
चिन्तन से, मंथन से, विमर्श और विचार से
दलित, शोषित, वंचितो के व्यापक सहकार से
पूर्ण असहयोग से, चुनौती से, ललकार से।

मैं लडूंगा
लड़ता रहूंगा
अकेला भी
और सबके साथ भी
अपनी अन्तिम साँस तक
अन्तिम शब्द तक
पर अपना सन्तुलन बनाये रखते हुए
क्योंकि जानता हूँ
इस मक्कार व्यवस्था की
सोची-परखी हुई रणनीति
यह मुझे थका कर
झुंझलवाकर, पगलवाकर
शहीद कर देना चाहती है
लेकिन मैं नहीं बनूंगा इसकी साजिश का शिकार
साबुत बचाये रखकर अपना संतुलन
लड़ता रहूंगा इससे
जब तक कि यह बदल नहीं जाती
या मुझे खत्म नहीं कर देती
और मेरे खप जाने के बाद भी
लड़ते ही रहेंगे मेरे जैसे असंख्य लोग
जब तक कि बदल नहीं जाती यह
मानवभक्षी, मक्कार, मायाविनी व्यवस्था।

●●●

काश, हम बन सकते

कल्पना करो
कि मैं पैदा हुआ होता
हिन्दुस्तान के किसी गांव में
किसी मेहतर के घर में
और मुझे शाम के अँधेरे में कुएं से पानी भरते हुए
पकड़ लिया जाता
या किसी कस्बे में म्यूनिस्पैलिटी के नल से
पानी पीते हुए
और इस अपराध के लिए
मेरी लाठी डंडों से की जाती पिटाई
कल्पना करो
कि स्कूल में मुझसे अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता
छू लेने पर मटकी फोड़ दी जाती
मेरे ही सिर पर
या पेंट पहन लेने पर
जाट का लड़का मारता मुझे
'ढेढ़ के छोरे की यह हिम्मत' कहकर
तो क्या मेरा खून न खौल जाता
और मैं मुंह न तोड़ देता मुझे इस तरह पुकारने वाले का?
या अगर घिरा हुआ महसूस करता अभिमन्यु की तरह
वर्ण-अहंकार के सातों महारथियों से सब तरफ
तो मन न करता मेरा कि
एक मानवबम बनकर फूट पड़ूं
और धज्जियाँ उड़ा दूं
अमानुषिक अत्याचार के इस चक्रव्यूह के एक एक प्रहरी की।

कल्पना करो कि तुम जो आज
दलित उत्पीड़न कानून से सताया हुआ महसूस करते हो खुद को
तुम्हीं होते मेरी जगह
एक भंगी के, एक चमार के, एक रंडी के बेटे
और पुकारे जाते अपने उसी नाम से

कुछ न बिगाड़ा जाता तुम्हारा
केवल तुम्हें पुकारा जाता
भंगी की या रंडी की औलाद कहकर
सोचो कैसा लगता तुम्हें ?
कैसा लगता सिर्फ अपने सही जातिनाम से पुकारा जाना ?
और कैसा लगता ?
शंकराचार्य का यह कथन
कि 'छुआछूत तो हमारे धर्म का अनिवार्य अंग है'
मुंह नोच लेने का मन नहीं करता तुम्हारा ?
ऐसे अन्याय को धर्म कहने की हिमाक़त करने वाले का ?

अरे अपनी छोड़ो
तुम्हारी जगह खुद गाँधी जी होते
एक भंगी के बेटे अपने समय के हिन्दुस्तान में
तो मैं देखता कि वे कैसे गाँधी जी बने रहते
कैसे रोकते अपने भीतर से कसमसाते हुए भगतसिंह को ?

तुम जो तुम हो
मैं जो मैं हूँ
गाँधीजी जी जो गाँधीजी हैं
यह सब इसलिए कि हम सब
सवर्ण परिवारों में पैदा हुए हैं
यह देश, यह दुनिया
यह न्याय, यह विधान, यह मानवाधिकारों की चर्चा
सब ऐश है, ऐश !
ऐश्वर्य है भद्रलोक में पैदा होने का !

काश ! हम सब
एक घंटे के लिए ही सही
बन सकते किसी भंगी, किसी चमार के बेटे
तो क्यों इतना कड़वा-तीखा होता
उनका यह सीधा-सादा
समता का न्यायपूर्ण संघर्ष।

नर–वानर

थोड़ी अक्ल मिली है जिसको
यह नर वह वानर है
नहीं फरिश्ता गिरा भूमि पर
यह विकसित बन्दर है।

फिर भी इस बन्दर में क्षमता
ग़जब दिखाई देती
यह चाहे तो कर सकता है
आसमान में खेती।

लेकिन यह तो बना रहा है
स्टार वार के नक्शे
माचिस इसके हाथ, जलेगी
पूरी दुनिया भक् से।

इसके ही है हाथ, स्वयं में
यह सद्बुद्धि जगाए
अपने थोड़े वंशाणु बदल
खुद को इन्सान बनाए।

नहीं तो अपने पाँव कुल्हाड़ी
नहीं सिर्फ मारेगा
यह जीवन, जलवायु, धरित्री
सबको संहारेगा।

●●●

नयी सदी की शुरूआत में

कैसा परिदृश्य है अपनी इस प्यारी पृथ्वी का
नयी सदी की शुरूआत में ?

पर्यावरण प्रदूषण है, ऊष्मीकरण है
परमाणु कचरा है, रेडियोधर्मी विकिरण है
जनसंख्या विस्फोट है, क्षेत्रीय असन्तुलन है
अकेली महाशक्ति का मनमानापन है
पूरे भूमण्डल का बाजारीकरण है
बची खुची मानवीयता का व्यापारीकरण है
राजनीति का अपराधीकरण, संस्कृति का एंद्रियकरण है
विचारधारा का अन्त, सत्ता और सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण है
पांचसितारा पार्टियां है, हरामखोर वैभव का फूहड़ प्रदर्शन है
समृद्धि ही साध्य है, मानव संसाधन है
बालिका-भ्रूण हत्या है, दलित दहन है
निर्बल नारियों का सरेआम नग्नीकरण है
एक तरफ आतंकवाद है, बुनियाद-परस्ती है
दूसरी तरफ पर्मिसिव समाज है, मौज है, मस्ती है
न कोई किसी को रोकता है, न टोकता है
मनुष्य न नागरिक है, न इन्सान है
बस वोटर है या केवल उपभोक्ता है।

●●●

किताबें

किताबों में बंद हैं लोगों के अनुभव, उन के सत्य,
पुरानी किताबों में पुराने लोगों के खोजे हुए रास्ते हैं
उन के नक्शे-कदम हैं
पर ज़माना बदलता रहता है लगातार
आँधी-तूफान, धूप-ताप-वर्षा
भूस्खलन और भूकंप
बदलते रहते हैं इस धरती के चेहरे को बेशुमार
पुराने खोजे हुए रास्ते खो जाते हैं कहीं
नामों-निशान तक मिट जाते हैं उन के
वे सिर्फ़ किताबों में दिए हुए नक्शों की मदद से
ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं उन्हें वहाँ
जहाँ वे नहीं हैं
चस्पा करते हैं नए पहाड़ों, घाटियों और झीलों पर
पुराने नाम
और खुश हो लेते हैं - यह रही अयोध्या।

किसी की किताब डेढ़ सौ साल पुरानी है
वह उसे पढ़ता है
एक धर्मनिरपेक्ष धार्मिक की श्रद्धा के साथ
और अक्षरशः सत्य देखना चाहता है...
किसी की है चार सौ साल पुरानी
वह उसे साक्षात गुरू की देह मानता है
और पढ़ने से ज़्यादा ध्यान
चँवर डुला कर उस से मक्खी उड़ाने पर देता है।
किसी को नाज़ है अपनी चौदह सौ साल पुरानी किताब पर
तो किसी को दो हज़ार साल पुरानी पर अभिमान है
पुरानेपन के गौरव की इंतिहा
साढ़े तीन हज़ार साल पुरानी -
दुनिया की सब से पहली पोथी पर जा कर होती है
जिस का अक्षर-अक्षर सत्य है आज भी...
अगर ऐसा है -

तो क्या मनुष्य पिछले चार हज़ार साल से
भाड़ ही झोंक रहा था? यह पूछना चाहिए।

यह नहीं कि पुरानी किताबों में सब गप्पें ही गप्पें हैं
उन में कूड़े के ढेर के बीच-बीच
चमकते हुए अनुभव के मोती भी मिलते हैं कई बार
पर उन्हें खोजने के लिए भी कबीर की आँखें चाहिए
कबीर ने नहीं लिखी थी कोई किताब
पुस्तक की लेखी से टकराना पड़ा उसे जीवन भर
पर उस के पंथियों ने एकत्र कर ली उस की भी वाणी
साखी, सबदी और रमैनी में
और पूजने लगे उसे भी।
चाहे पूजें कबीर के पंथी उस की किताब
या कबीरवंशी उस की मज़ार
कबीर तो यही कहते हैं
''अरे इन दोउन राह न पाई''
क्योंकि राह किताबों से नहीं निकलती
न मंदिरों और मज़ारों से
राह निकलती है राह खोजने की कोशिश में से
अपनी आँखों से देखे, सोचे
और गुने हुए नज़ारों से
खुद अपनी नज़र से अपने हाथों के दिये से
खुद अपने कमाए, अपने भोगे, अपने किये से।

किताबें उन्हीं की स्मारक हैं जिन्होंने कुछ किया और खोजा
तुम उन में से रास्तों के संकेत पा सकते हो
रास्ते नहीं
किताबों को किताबों की तरह पढ़ो
उन में बसो नहीं
उन में बस गए तो वे जकड़ लेंगी तुम्हें
बंद कर लेंगी अपने ''पिचर'' में
घटपर्णी पौधों की तरह
और पी जाएंगी तुम्हारा सारा सत्व
अपने पाचक तेजाबी द्रव्य में घोल कर।

इसलिए किताबों के सामने सिर नहीं झुकाओ
उन्हें पढ़ो
उन से बहस करो, उन से लड़ो
बोझे की तरह उन्हें सिर पर मत ढोओ
उन्हें साइकिलें बना कर उन पर बैठो
और आगे बढ़ो।

●●●

बचाओ

एक ग्रह मात्र नहीं है यह
लाखों तारों वाली इस आकाश गंगा के
एक छोटे से सौर मंडल का,
यह पृथ्वी है...
हमारा एक मात्र आवास
इस अनन्त अन्तरिक्ष में
पूरी कायनात में हमारा इकलौता घर।

यह पृथ्वी है : धारयित्री धरित्री
धूप-ताप, आँधी-तूफान
वर्षा-तड़ित-उल्कापात
सब कुछ सहती है अपनी संतानों के लिए।
वसुन्धरा : हमारे सारे वैभव की खान
हम सबकी सारी मूलभूत आवश्यकताओं की
पूर्ति में पूरी तरह सक्षम।
व्यक्त करती है अपना प्रेम :
उच्छल जल प्रपातों में
अपना उत्साह : ज्वार की लहरों में
अपना रोमांच : भूकम्पों में
अपना आक्रोश : ज्वालामुखियों के ज्वलन्त लावे में
पर अन्ततः इसकी सारी अभिव्यक्तियाँ
एक वत्सल करुणा ही साबित होती है
अपनी सन्तानों के लिये
इसके भूकम्पों से फूट पड़ते हैं
खारे पानी से अभिशप्त विशाल भू-भागों में
मीठे पानी के नये-नये सोते
इसके आग उगलने वाले ज्वालामुखी
बंजर रेगिस्तानों को
हरे भरे वनों और उर्वर खेतों में बदल जाते हैं।

पर साढ़े चार अरब वर्ष पुराने अपने इस घर में

तुम अकेले ही नहीं हो
छह अरब और जीव प्रजातियाँ
बसती है यहाँ तुम्हारे साथ
इनके साथ खेलो, खाओ
हँसो, गाओ
पर यह ध्यान रखते हुए कि
ये सब भी तुम्हारी ही तरह पुश्तैनी किरायेदार हैं
इस वैश्विक विश्रामगृह के
यह धरती तुम्हारे बाप की नहीं है
इन सबकी है –
इन सबके बाप-दादाओं की
क्योंकि इनमें से लगभग सभी
तुम्हारे आने के बहुत पहले से रहते आये हैं यहाँ
नहीं,
ये केवल तुमसे पुराने किरायेदार ही नहीं हैं, यहाँ के
ये तुम्हारे लकड़दादाओं-बापदादाओं के
बापदादों-लकड़दादों की सन्तानें भी हैं
मान कर चलो
कि यह पृथ्वी
इन सबकी भी उतनी ही है
जितनी तुम्हारी
इनके साथ शान्तिपूर्वक जीना सीखो
पर इसका मतलब यह भी नहीं है कि
जैन मुनियों की तरह बाँध लो कपड़े की पट्टी
अपने मुँह पर
कि कहीं कोई जीवाणु साँस के साथ
तुम्हारे मुँह में जाकर मर न जाय
क्योंकि इनमें से कितने ही
इतने सूक्ष्म हैं कि
उन्हें कोई पट्टी, कोई छलनी, कोई मास्क
रोक नहीं सकता तुम्हारी साँस में जाने से
और जरूरी भी नहीं है कि वे
तुम्हारी साँस में जाने भर से मर ही जाँय
ये जिन्दा रह सकते हैं तुम्हारे फेफड़ों में

तुम्हारे हृदय में, तुम्हारे खून में
यह भी नहीं कि इनमें से कोई
तुम्हारा भोजन न बने
क्योंकि जीव ही तो जीव का भोजन है यहाँ।
पर तुम जो इनमें से सबसे बुद्धिमान हो
इतना तो करो ही
कि इनमें से किसी की नस्ल विलुप्त न होने पाये
तुम्हारी प्रगति की अंधी दौड़ के संजाल में फँसकर
सब जियें, जीते रहें, मरते रहें
काम आते रहें तुम्हारे भी
पर ऐसे नहीं कि हमेशा के लिए समाप्त ही हो जाय
जैसे समाप्त हो गये जुरासिक युग के डाइनासौर
प्रकृति की अपनी लीला से कोई समाप्त हो
तो हो
उसे प्रकृति देखेगी
पर तुम अपनी लीला या लोभ या लापरवाही से
मत होने दो किसी भी नस्ल को नेस्तानामूद
और ध्यान रखो खासकर अपनी का
क्योंकि जब तुम उसे नष्ट करोगे तो
अकेले उसे ही नहीं करोगे
उसके साथ नष्ट कर लोगे इन सबको भी
और इनके इस विश्व में एक मात्र आवास
अपनी इस पृथ्वी को भी

बचाओ इसे अपने आणविक और जैविक हथियारों से
युद्धों से,
और उनके जन्मदाता राष्ट्र-राज्यों से
जनसंख्या विस्फोट से
अन्तर्प्रजातीय संघर्षो से
और सामूहिक आत्महत्या से।
तुम प्रकृति के सबसे समझदार बेटे हो
उसी की तरह व्यवहार करो अपने साथ
इन सबके साथ
और इनके साथ-साथ

अपनी इस नैसर्गिक माँ के साथ भी
इसे जीतने का दंभ छोड़कर
इसे समझो
इससे सीखो
अपनी सारी वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद
अभी भी तुम नहीं बना सके हो
उसकी तरह की एक भी संश्लिष्ट संरचना
करोड़ों बरसों तक प्रयोग कर कर के
इसने जो कुछ बनाया है, उसे बचाओ
अपने अतिरेकों से
और इसके प्रति कृतज्ञता महसूस करो
इस सबके लिए।

●●●

काक्रोच

हम काक्रोच हैं
तुम्हारे संसार के समानान्तर है
हमारा भूमिगत संसार
तुमसे कहीं पुराने वासी हैं हम इस पृथ्वी के
बीस करोड़ बरस पहले
जब न विशालकाय डाइनासौर थे
न नीली व्हेलें और मेमथ
तुम तो खैर नहीं थे किसी की कल्पना में भी
तुम्हारे दादे-परदादे बन्दरों और गुरिल्लाओं तक का
कहीं अता-पता भी नहीं था
तब हमारा ही राज था इस विशाल भूमण्डल पर
युगों-युगों तक चलता रहा अखण्ड
और आती गयीं एक के बाद एक
निसर्ग माता की नयी-नयी निर्मितियां
आखिर में तुम आये
और तुमने अपनी फलसंग्रही और आखेटक
अवस्थाएं पार की
खेती करना और एक जगह बसना शुरू किया
झोंपड़ियाँ और मिट्टी के मकान बना कर
तब से तुम्हारे साथ हैं हम
तुम घिन से भर उठते हो
हमें अपने भण्डार या रसोईघर में देख कर
पर हमें तुम्हारी सूरत
बहुत प्यारी लगती है
जब तुम बुहारते हो हमें अपने झाड़ुओं से
उठा लेते हो अपने वेक्यूम क्लीनरों से
और कूड़ेदानों में डालकर
फेंक आना चाहते हो घर से कहीं दूर
या मारने की कोशिश करते हो
अपने बेगान, फ्लिट या हिट से
हम तुम्हें देखते हैं हसरत भरी नज़र से एकटक

और तुम्हारी मार से बचने की
कोशिश भी नहीं कर पाते
काश, तुम समझ सकते हमारी
तुम्हारे साथ बने रहने की अदम्य इच्छा को
तुम अपनी कंडियो, डोलचियों, कनस्तरियों में से
जब कभी निकालते हो दालें-दुपालें, बड़ियाँ-पापड़
हम तुम्हें भागते नज़र आते हैं
पर हम क्या करें ?
हमारी भी मजबूरी है यह चिरकाल अर्जित
कि जो तुम्हारे घर हैं वे ही हैं हमारे भी बसेरे
और जो तुम्हारे भोजन हैं, वही है हमारा भी खाद्य
हम तुम से दूर नहीं जाना चाहते कत्तई
हजारों पीढ़ियों का साथ है हमारा तुम्हारा
तुमने कृषिकार्य शुरू किया
और हम आ धमके तुम्हारे खेतों में
छूटे हुए अन्न के लिए
तुम्हारे घरों में
तुम्हारे उच्छिष्ट भोजन के लिए
हमारी खानपान की सारी आदतें बदल कर रख दीं
तुम्हारे सहवास ने
अब तो तुम्हारे दाल-चावल, आटा-मैदा
आलू-बेंगन, मांस-मछली, सब कुछ
हमारा भी भोजन है
तुम्हारे समानान्तर बसा है हमारा संसार
कड़ी ठण्ड से बचने के लिए बनाये गये तुम्हारे
लकड़ी के फर्श के नीचे
सिर्फ़ तुमसे छः इंच की दूरी पर
या तुम्हारे गगन-चुम्बियों के बेसमेन्ट के नीचे
बनी हुई विशालतम मल-सुरंगों में
तुमसे बीस या चालीस या सैकड़ों फुट नीचे
पर तुम्हारे समानान्तर
अलग-अलग संस्कृतियां है तुम्हारी-हमारी
अलग-अलग नस्लें हैं
अलग-अलग रंग है खून तक का

क्या इसीलिए हम तुम्हारी घृणा के पात्र हैं ?
हम तो जीते हैं तुम्हारा ही मुंह देखकर
वही खा लेते हैं जो तुम दे देते हो
छोड़ देते हो या फेंक देते हो
यहाँ तक कि तुम्हारा उच्छिष्ट और उत्सर्जित भी
फिर भी क्यों देखते हो तुम हमें
नफ़रत की निगाह से
क्यों हटाना चाहते हो अपने आसपास से ?
क्या तुम्हारी ही तरह हमें भी
जीने का अधिकार नहीं है इस धरती पर ?

●●●

अजन्मे बालिका भ्रूण का आत्मचिन्तन

मैं अपनी माता के गर्भ में हूँ
मनुष्य की भावी जननी
पर मुझे खुद जन्म लेने का अधिकार नहीं है
अल्ट्रासाउंड तंरगों से पहचान ली गयी है मेरी योनि
और मुझे समाप्त करने का निर्णय ले लिया गया है
जन्म लेने से पहले ही।
और यह सब उस नरपशु की इच्छा से ही नहीं हुआ है
जो पूरी तरह उचित पाता है विवाह के साथ दहेज को भी
और उसी के कारण बोझ समझता है मेरे जन्मको
इसमें उस पशुनारी की स्वीकृति भी शामिल है
जो पुरुष नज़रों से देखते-देखते अपने आप को
अपने नजरिये में पुरुष ही हो गयी है
और इसलिए उचित समझती है
अपने घर के दरवाजे मेरे लिए बन्द रखना
दोनों सहमत हैं मेरी जन्म पूर्व हत्या के लिए
अखबार चिन्तित हैं :
लगातार घटती जा रही है हर जनगणना में
लड़कों के अनुपात में लड़कियों की संख्या
पंजाब, हरियाणा और गुजरात में वह
प्रति हजार रह गयी है इतनी और इतनी और इतनी
वे सोचते हैं कि जन संख्या का यह असन्तुलन
पैदा करेगा नयी सामाजिक समस्याएं।

पर मैं खुश हूँ अपनी माँ की कोख में
जन्म से पहले ही दम घोंट दिये जाने की अपनी नियति पर
क्योंकि इसी वीभत्स विडम्बना में से
चमकेगा मादा मानवों का भविष्य
हमारी संख्या जितनी कम होती जाएगी
उतना ही मूल्य और महत्व बढेगा मेरी भावी बहिनों का
आखिर जब हजार में से दो सौ या उससे भी ज्यादा
लड़कों को नहीं मिलेंगी अपने लिए लड़कियाँ

आज से बीस साल बाद
तो किस मुँह से मांग पाऐगें उनके बापदादा
दुल्हन के साथ दहेज ?
क्या खुल न जाएगी तब तक
बची खुची बेटियों के बापों की शर्म
और वे ही नहीं मांगने लगेंगे वधूमूल्य ?
आखिर कब तक देते रहेंगे वे बेटियाँ
दहेज के साथ या बिना मोल ?
क्यों नहीं वसूलेंगे वे उनके पालन-पोषण की कीमत ?
जब उत्पादन कम होगा और मांग ज्यादा
क्यों नहीं करेगा बाज़ार अपना काम ?
और जब उम्मीदवार ज्यादा होंगे
और चुनने वालियाँ कम
क्यों नहीं फिर से मिलेगा उन्हें
अपने लिये सबसे उपयुक्त वर चुनने का अधिकार ?
इसलिए मैं
मनुष्य की अमानवीयता का सारा रोना-धोना छोड़कर
प्रकृति के इस न्याय के प्रति आश्वस्त
अपनी बलि चढ़ा रही हूँ खुशी-खुशी।

गिराते जाओ, गिराते जाओ
अपनी पत्नियों के गर्भों से स्त्री-भ्रूण
ओ मंददृष्टि मर्दसत्तावादियो !
क्योंकि इसी में से उत्पन्न होगी वह संक्रान्ति
जो स्त्री के महत्व और मुक्ति का
मार्ग प्रशस्त करेगी।

अपनी राख में से ही उभरेगी वह फिर से
पौराणिक पक्षी फीनिक्स की तरह।

●●●

भाषिक भ्रष्टाचार

उन्होंने हमारी मिट्टी, पानी और हवा को ही
प्रदूषित नहीं किया है
हमारी भाषा को भी भ्रष्ट कर दिया है
वे धनियें में लीद
और काली मिर्च में पपीते के बीज ही नहीं मिलाते
अच्छी-अच्छी अवधारणाओं में भी मिश्रित करते रहते हैं
अपनी कमीनी करतूतें।
अपने लिए लूट की खुली छूट को वे कहते हैं
'उदारीकरण'
अपनी पूंजी के अन्य देशों में प्रवेश की
राह के रोड़ हटाने को
उन देशों के 'आर्थिक सुधार'
विश्व के सभी संसाधनों पर प्रभुत्व जमाना चाहते हैं वे
'वैश्वीकरण' के शानदार नाम पर
सिर्फ उन्हीं के द्वारा नियंत्रित बाजार है उनकी भाषा में
'मुक्त बाजार'
जब तक किसी देश के बाजार
उनके भेजे हुए माल से पट नहीं जाते
वह कहलाता है 'अविकसित'
और 'विकास' के क्रम में
उसकी सीमान्त आबादी
जब गरीब होते-होते गायब हो जाती है
वे बतलाते हैं उसे 'विकास की कीमत'।

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावों पर
उसकी लम्बी दूरी तक मार करने वाली मिसाइलें नष्ट करवा कर
वे ईराक पर आक्रमण करते हैं
अपनी लम्बी दूरी की मिसाइलों से
और अपने इस धोखेबाजी भरे बेशर्म हमले को नाम देते हैं
'इराकी मुक्ति का अभियान'
जबरदस्ती थोपी गयी भयंकर भुखमरी के बाद

खाने के कुछ पैकेट टपकाने को वे कहते है
'मानवीय मदद'
व्यापक विध्वंस और नर-संहार के बाद
वे कितनी उदारता से स्वीकार करते हैं
'ईराक के पुनः निर्माण में संयुक्त राष्ट्रसंघ की भूमिका'।
अरुंधती ठीक ही कहती है
खुद पाखाना करने के बाद
वे उसकी सफाई करवाना चाहते हैं संयुक्त राष्ट्र से
यानी लेना चाहते हैं उससे
मेहतरानी का काम
वाह! कितने अशोभन कार्य को देते हैं वे
कितना शोभन नाम।

●●●

सिकुड़ता हुआ अन्तरिक्ष

कम होती जा रही है जगह दिनों दिन कम होती जा रही है
चारों तरफ का आकाश उन्होंने विज्ञापनों से घेर लिया है
तरह-तरह के टी.वी. और फ्रिज और वाशिंग मशीनें हैं
सब तरफ साबुन-तेल और प्रसाधन सामग्री है
इन सबके बीच कहाँ है जगह ?
कुछ सोचने और समझने की
तमाम ग्लेमर-भरे धारावाहिकों में
कहाँ है जगह ?
हमारी किसी जानी-पहचानी सच्चाई की
धांसू डाइलोगों के बीच
मन तरस जाता है एक सीधे सरल वाक्य के लिए
अधनंगी औरतों से अश्लील समूह-नृत्यों के बीच
एक मोहक लयात्मक गति के लिए।

कितनी घुटन है
कितना सिमट गया है आकाश
धुएँ से भरा है पूरा माहौल
इतना शोर है चारों तरफ
शोभायात्राओं और बारातों के बैण्डबाजों का
कि कुछ भी बोलना बेमतलब है।
बरगलाये हुए लोगों के समूह ही अब तय करते हैं
कि कौन क्या करे और क्या न करे
कि कौन फिल्म बनाये और कौन न बनाये
और बनाये तो कैसी ?
कौन सभा करे और कौन न करें ?
और करे तो उसमें कौन बोले और कौन नहीं ?
और जो बोले तो क्या बोले ?
बहुत कम जगह रह गयी है अपने मन की बात कहने की
मन-माफिक हाथ-पाँव हिलाने की
डर लगा रहता है लगातार
कि किसकी कौन बात किस गिरोह के नेता को हो नागवार

चारों तरफ दबाव है दबंगों का
वे चाहते हैं कि जो जहाँ है जिस हालत में
बना रहे वहीं पर उसी हालत में
बैठा है तो बैठा रहे, सोया है तो सोया रहे
जाति की नफरत में और धर्म के नशे में खोया रहे।

●●●

मैं ढूँढ़ रहा हूँ

कोई पासी, चमार, ब्राह्मण है, कोई भिश्ती, जुलाहा, पठान है
कोई जैन है, कोई बौद्ध है, कोई हिन्दू, कोई मुसलमान है
जातियों और धर्मों के इस बियाबान में मैं ढूँढ़ रहा हूँ
कितने ऐसे लोग हैं, जो केवल इन्सान हैं।

●●●

विवेक संगत

पहले मनुष्य ने पशुपक्षियों को
बुद्धिमानी के काम करना सिखाया
कुत्तों को भेड़ों की निगरानी करना
चोर-डकैतों के सुराग ढूँढ़ना
कबूतरों को संदेश पहुँचाना
और बाज़ों को शिकार करके लाना।
फिर जड़ पदार्थो की बारी आयी
लोहे की एक डिबिया को सिखा दिया उसने
सही-सही समय बताना
और प्लास्टिक के एक कनस्तर को
गाने और खबरें सुनाना
देखते-देखते उसने छोटी-छोटी वस्तुओं में भर दी
विवेकपूर्ण कार्यो की अनेक क्षमताएँ
अब उसने अपने दिमाग से सौ गुना तेजी से
जटिल गणनाएँ करना सिखा दिया है कम्प्यूटरों को
राजमार्गो के चौराहों पर यातायात-नियंत्रण से लेकर
बन्दरगाहों पर खड़े जहाजों से
भारी सामान उतारकर उसे
सही जगह पहुँचाने का सारा काम करने लगे हैं वे खुद ही
उसने सिखा दिया है अन्तरिक्षयानों को
निर्वात में से अपने लिए खींचकर आवश्यक सौर-ऊर्जा
शून्य गुरुत्वाकर्ष क्षेत्र में बढ़ाते हुए अपनी गति
न केवल मंगल या वृहस्पति तक पहुँचना
वहाँ अपने अनुकूल अवतरण का स्थान खोजना
उतरना
और वहाँ की मिट्टी के नमूने लेकर
सही सलामत वापस पृथ्वी पर लौट आना भी।

वस्तुओं को विवेक-संगत व्यवहार करना तो
सिखा दिया है इन्सान ने
पर ज़रा सोचिये
खुद उसका व्यवहार दूसरे मनुष्यों के साथ
जीव-जन्तुओं और प्रकृति के साथ
कितना विवेक-संगत है ?

अपने ही घर में

आसमान में धूप है
हवा में हल्की गुलाबी ठंडक है
चटाई पर मैं हूँ
मालिश हो रही है
तन को राहत है
मन में शान्ति है
घर में बिजली है
अच्छा इन्वर्टर है
नल में पानी है
नियमित पेंशन है
बैंक में पैसा है
मनचाहा पहनता हूँ
मनचाहा खाता हूँ
अपने ही किराये से
सब जगह जाता हूँ
पत्नी अनुकूल है
सहिष्णु है, उदार है
बच्चे बुद्धिमान हैं
विनम्र, समझदार हैं
पढ़ने को किताबें हैं
लिखने को कलम हैं
देखने को डिस्कवरी है
करने को काम हैं
जो शान्ति से करने हैं
स्वर्ग और कहाँ है?
अपने ही घर में है।

●●●

सोचना

जब आप किसी के बारे में सोचते हैं
आप उसे बचा रहे होते हैं
– रोबार्तो हुआरोज, अर्जेन्टीनी कवि

जिसके बारे में आप सोचते हैं
उसे आप बचा रहे होते हैं
आप सोचते हैं पेड़ों के बारे में
बाघों और व्हेलों के बारे में
ध्रुवीय पेंग्विनों के बारे में
इस पृथ्वी के पर्यावरण के बारे में
स्वयं इस पृथ्वी के हाड़-माँस-मज्जा के बारे में
तो आप बचा रहे होते हैं इसे
आप सोचते हैं
और बताते हैं दूसरों को अपनी सोच
तो वे भी सोचते हैं उन चीज़ों के बारे में
जो आप की सोच में हैं
और उन्हें बचाने में मदद करते हैं
आप सोचते हैं आज़ादी और बराबरी और भाईचारे के बारे में
तो आप बचाते है बची हुई आज़ादी, बराबरी और भाईचारे को
बचाते ही नहीं बढ़ाते भी हैं उन्हें
इसलिये सोचते रहो उन सब चीजों के बारे में
जो इस दुनिया को बेहतर बनाती हैं –
बना सकती हैं
आप का सोचना उसे बेहतर बनाने में मदद करता है
जब दुनिया के ज्यादातर लोग सोचने लगेंगे
एक बेहतर दुनिया के बारे में
तो दुनिया बेहतर हो जायेगी।

नयी पीढ़ी के किशोरों से

न चण्ट-चालाक बनो, न भोले नादान बनो
न रूढ़िवादी हिन्दू बनो, न बन्द-दिमाग मुसलमान बनो
नयी पीढ़ी के ओ किशोरों और नौजवानों
बन सकते हो तो थोड़े और बेहतर इन्सान बनो।

सिंहासन या दरी ?

कितना ग़लत था
बीसवी सदी के क्रान्तिकारियों का नारा –
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है !
क्या हुआ सिंहासन खाली होने से ?
सिंहासन कोई सराय तो था नहीं
कि जनता वहां आकर आराम से रह सकती
एक ही व्यक्ति तो बैठ सकता था उस पर
और वह बार-बार बैठा
जनान्दोलनों के सिर पर सवार होकर
पर उससे क्या हुआ ?
सिंहासन पर बैठने के बाद
हर नत्थू खैरा
नादिरशाह हो गया
और जनता फिर-फिर आन्दोलित होती रही
नये-नये नादिरशाहों के खिलाफ़।
इसलिए नारा सिंहासन खाली करने का नहीं
उसे खत्म करने का होना चाहिए
ताकि लोग दरियां बिछा कर बैठ सके एक ही स्तर पर
और सोच विचार कर ले सकें अपने निर्णय
बिना किसी सिंहासनी हस्तक्षेप के।

●●●

परमपिता परमात्मा के सिवा

कौन थामें है सूरज, चाँद, सितारों को आसमान में ?
किसने रची है असंख्य नीहारिकाओं से भरीपूरी यह सृष्टि ?
किसके आदेश से घूमती है यह पृथ्वी
होती है सुबह-शाम
बारी-बारी से बदलती हैं ऋतुएं।
कौन है जो फूलों में खिलता है
पक्षियों में चहचहाता है
हाथियों में चिंग्घाड़ता है
शेरों में दहाड़ता है
बादलों में कौंधता है
और समुद्रों में गर्जना करता है ?
कौन हो सकता है वह
उस सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान ईश्वर के सिवा ?

कौन है जिसके आदेश के बिना
हिलता नहीं है एक पत्ता भी ?
कौन जार्ज बुश से भिजवाता है ईराक में फ़ौज़ें
और ओसामा बिन लादेन से गढ़वाता है
ध्वंसजीवियों के दस्ते ?
किसने तुड़वायी सोमनाथ की मूर्तियाँ
महमूद गज़नवी से ?
और बाबरी मस्जिद बजरंगियों से
कौन पढ़ाता है नरेन्द्र मोदी और बाल ठाकरे को
हत्यारे हिन्दुत्व का पाठ ?
कौन जैशे मुहम्मद को सिखाता है जिहाद ?
कौन तालिबान से रखवाता है
लाल मस्जिद के गेट पर बम ?
किसकी कृपा से हिटलर
यहूदियों की चमड़ी से बनवाता रहा लैम्प शेड
बरसों तक
और ईदी अमीन खाता रहा मनुष्यों का मांस ?

कौन हो सकता है वह
परम दयामय जगद्नियन्ता जगदीश्वर के सिवा ?

कौन है जो बिना मूल की अमरबेल को पालता है
कौन है जो अकर्मण्य अजगरों और निकम्मे पंछियों को
भोजन देता है ?
कौन गया के निठल्ले पंडों से छिनवाता है
बेवकूफ पिण्डदानियों के कपड़े तक
और फिर भी कृपा पूर्वक बचा लेता है उनके जांघिये
कौन गिरवाता है हिन्दुस्तानी औरतों के गर्भो से
बालिका भ्रूण
कौन चुरवाता है मक्कार डाक्टरों से अबोध मरीजों के गुर्दे
पेट के ऑपरेशन के नाम पर
कौन करवाता है हत्यारों से हत्याएं ?
बलात्कारियों से बलात्कर ?
और न्यायधीशों से दिलवाता है उन्हें सज़ाएं
बरसों तक खिंचते रहने वाले मुक़दमों के बाद ?
कौन सड़ाता रहता है निरपराधों को जेलों में
बिना मुक़दमों के बीस-बीस साल तक ?
कौन लड़वाता है हिन्दुओं को मुसलमानों से
गूजरों को मीणाओं से
और सिक्खों को नामधारियों से ?
कौन पहनवाता है बाबा राम रहीम को
गुरू गोविन्द सिंह का लिबास ?
और सिक्खों से मचवाता है बवाल ?
उस परमपिता परमात्मा के सिवा
और कौन हो सकता है वह ?

●●●

कितना अच्छा है

कितना अच्छा है कि
कोई ईश्वर नहीं है यहाँ
और न अमर ही हैं लोगों की आत्माएं
जन्म-जन्मान्तरों में अपने चोले बदलती हुई
जैसा कि कई धर्मों ने मान रखा है
बिना जांचे।
अगर सचमुच होता एक ईश्वर
जैसा कि लोग उसे बताते हैं
और भुगतते होते लोग
नए-नए जन्म लेकर अपने अपने कर्मों का फल
तो यह दुनिया और भी ज्यादा बुरी होती
और भी ज्यादा नारकीय
और लोग बेचारे चूर-चूर जो जाते
चौरासी लाख योनियों में भटकते-भटकते।
अगर स्वर्ग और नरक और दो लोक होते
इस लोक के अलावा
-- जैसा कि लोग मानते हैं
तो ज्यादातर लोगों को तो जाना ही पड़ता
किसी न किसी कुम्भीपाक में
--हालांकि अब भी ज्यादातर लोग नरक में ही हैं
भूख, बीमारी, गुलामी सह ही रहे हैं इसी लोक में
पर वे इसकी नारकीयता कम करने के लिए लड़ तो रहे हैं लगातार
और हो भी रहा है कम निरंतर
इस दुनिया में नरक का क्षेत्रफल
पहले से बेहतर बन रही है यह लगातार।
अगर सचमुच स्वर्ग और नरक होते
और पहुंचा दिए जाते लोग उनमें मरने के बाद
तो क्या कोई लड़ सकता था उनकी व्यवस्था सुधारने के लिए
यमराज के खिलाफ ?
यहाँ ईदी अमीन हों या जार्ज बुश
लोग लड़ते तो हैं

लड़ तो सकते हैं उनकी तानाशाही के खिलाफ
और सफल भी होते हैं कई बार
उनका तख्ता पलट देने में।

कितना अच्छा है कि कोई एक जगदीश्वर नहीं है यहाँ
और यह जगती छोटे-छोटे देशों में बंटी हुई है
और ज्यादातर देशों में
खुद लोगों के ही हाथ में है इसकी व्यवस्था
जहाँ नहीं है वहां भी हो रही है धीरे-धीरे
और लोग कुल मिलकर होते जा रहे हैं दिनोदिन
ज्यादा जागरूक, ज्यादा न्यायप्रिय और ज्यादा संवेदनशील
अपने परिवेश के प्रति।

कितना अच्छा है कि कोई ईश्वर नहीं है यहां
अगर कोई ईश्वर होता यहाँ हिन्दुओं की कल्पना का
लोग चाहे चोरी करते या बलात्कार
डकैती या हत्या
सिर्फ़ अन्तिम समय में उसका नाम भर लेने से माफ़ कर दिए जाते
और इसी लक्ष्य की साधना के लिए
जिंदगी भर रटते रहते हैं बिचारे बेवकूफ लोग
उसका नाम
ताकि अन्तिम समय में निकले वही उनके मुंह से।
बताओ कितना नामासक्त और अहमग्रस्त है उनका ईश्वर
जो यह भी समझ नहीं पाता
कि अजामिल उसे पुकार रहा है या पुकार रहा है
अपने उसके हमनाम बेटे नारायण को।
जो तार देता है उसे भी जो मरते समय
'हाय मरा' 'हाय मरा' कहकर जपता है
उसका उल्टा नाम
किस काम का है किसी नाम-निरपेक्ष भले आदमी के लिए
ऐसा भोंदू राम ?

या होता वह ईसाईयों का
पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के

तीन चेहरों वाला परमेश्वर
जिसके लिए पूरी मनुष्यता
दो ही भागों में बँटी हुई है
पापियों और तौबा करने वालों में
और तौबा करने वालों का वह अपना है
चाहे उन्होंने कितने भी पाप किए हों
परमेश्वर जो सर्वशक्तिमान तो है
पर उस शैतान का बाल भी बांका नहीं कर पाता
जो पापियों को पाप करने की प्रेरणा देता रहता है लगातार
कौन से न्याय की आशा की जा सकती है
पश्चाताप में छाती पीटने वालों के उस पक्षपाती से ?

या होता वह मुसलमानों का खुदा
जो किसको माफ़ करे और किसको दे सज़ा
यह सब निर्भर है उसकी स्वेच्छा पर
यानी नृशंस से नृशंस हत्यारे
बलात्कारी और ज़ालिम को वह बख्श सकता है
और सज्जन से सज्जन व्यक्ति को
दे सकता है सज़ा
अगर वह उस पर ईमान नहीं लाता
यानी उसके होने पर विश्वास नहीं करता
मनुष्य की अच्छाइयों के प्रति अंधे
ऐसे सर्वशक्तिमान, स्वेच्छाचारी, सनकी, कृपालु खुदा को
कौन भला आदमी पसंद करेगा ?

अगर कोई ईश्वर होता
--इन धर्मों की कल्पना का--
वास्तव में
तो वह कब का गोली से उड़ा दिया गया होता
किसी न किसी मानववादी क्रांतिकारी गुरिल्ले द्वारा
क्योंकि ऐसे अन्यायी अत्याचारी
सनकी और भोंदू भाग्यविधाता को
कोई कब तक सह सकता था ?

कितना अच्छा है कि कोई ईश्वर नहीं है यहाँ
सिर्फ़ है उसका सेमल के फल सा
खरगोश के सींग सा
बाँझ के बेटे सा
भुस-भरे जर्जर बाघ सा
एक अर्थहीन, खोखला, भुरभुराता हुआ नाम
जो आता रहता है वक्त बेवक्त
धूर्त सत्ताधारियों, शोषक व्यापारियों
और पाखंडी पुजारियों के काम।
और जिसे भोलेभाले बोधहीन दीन-दुखी लोग
लगाते रहते हैं अपने दुःख-दर्दो पर
समझ कर बाम।

●●●

कुहरे डूबा नया साल है

इस ठण्डक में क्यों कर निकले घर से इतने सारे लोग
ठिठुर रहे हैं स्टेशन पर ये बदकिस्मत बेचारे लोग।

कुहरे-डूबा नया साल है, बर्फानी ठण्डक से जकड़ा
काँप रहे हैं कम कपड़ों में ये कड़की के मारे लोग।

क्रियाकर्म में उनके लकड़ी छः क्विंटल मंजूर हुई
जाड़े में जड़-जड़ित हुए जो बिन अलाव के मारे लोग।

अत्याचार हो, भ्रष्टाचार हो, लूटखसोट या चोरी हो
निर्विरोध सब कुछ सह लेते कितने भले हमारे लोग।

क्या बतलाऊँ कैसे मेरे प्राण पुण्य हो जाते हैं
छुट्टी में जब घर आ जाते मेरी आँख के तारे लोग।

मानव-मानव मध्य विषमता जब तक दूर नहीं होती
सुख से कैसे जी सकते हैं, इस दुनिया के सारे लोग?

मल्टीनेशनल मकड़जाल के इस सफ़ेद अँधियारे को
आँखे फाड़े देख रहे हैं मेरे देश के हारे लोग।

मुझे प्रतीक्षा उस दिन की जब मिलकर ज्वालमाल बनकर
कूड़ा-करकट भस्म करेंगे, अलग-अलग अंगारे लोग।